जीवन विज्ञान माला-१

कुण्डलिनी योग तत्त्व

योगाचार्य्य-कुलावधूत
डा० दीवान गोकुल चन्द कपूर

॥ ॐ तत् सत् ॥

जीवन विज्ञान माला—१

कुण्डलिनी योग तत्त्व

प्रणेता

डाक्टर दीवान गोकुलचन्द कपूर

"योगाचार्य-कुलावधूत" (का० पं० स०)

बी० एस० सी०, एम० टैक्स इन्स० (मैन),

ए० एम्० ए० एल० (लन्दन), यल० यम० (डब.)

द्वितीय संस्करण] सं० २०२५ [मूल्य १)

© प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

चौक, वाराणसी

प्रथम संस्करण : १९५४

द्वितीय संस्करण : १९६९

मुद्रक :

मौर्य प्रेस

ख्वाजापुरा (जैतपुरा), वाराणसी
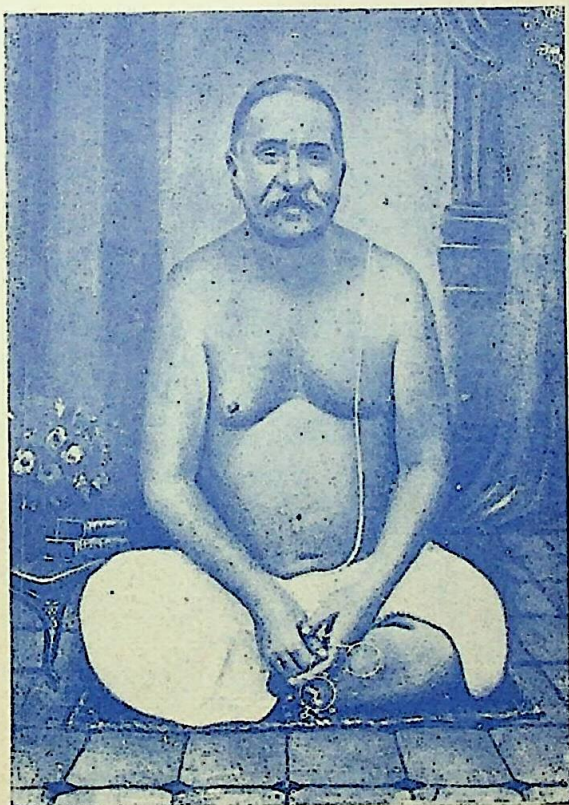
मेरे गुरुदेव

योगिराज दीवान श्रीबालमुकुन्द जी कपूर काशी

जन्म	निर्वाण
संवत् १९१५ भाद्रशुक्ल १४	संवत् १९८७ आश्विन शुक्ल ६
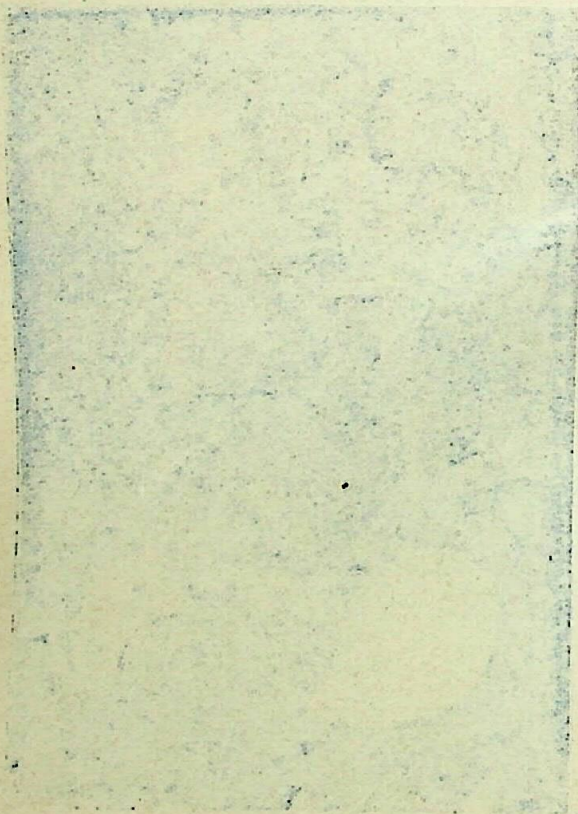
प्रसिद्ध योगी योगिराज ब्रह्मर्षि स्वामी सच्चिदानन्द महाराज प्रख्यात देवरहवा बाबा का शुभाशीर्वचन।

मुझे योगाचार्य्य कुलावधूत डाक्टर दीवान गोकुलचन्द कपूर द्वारा लिखित "**जीवन विज्ञान माला-१ कुण्डलिनी योग तत्त्व**" को पढ़कर बड़ा सन्तोष हुआ। योगविषय में ऐसी प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी भाषा में लिखी हुई मेरे देखने में नहीं आई। मैं लेखक को इसके लिए हार्दिक परम आशीर्वाद देता हूँ।

देवरहवा बाबा

अस्सीघाट-उसपार
गङ्गा तट काशी
ता० ८-७-५४

* ॐ पद् श्रीमद्गुरवे नमः *
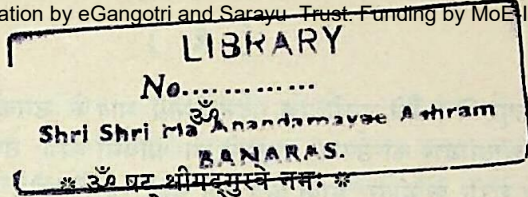
प्राक्कथन

(प्रथम संस्करण)

मैं (लन्दन-इङ्गलैण्ड से) अखिल विश्वधर्म कांग्रेस (अमेरिका) में सम्मिलित होने के लिए गया था। यह सन् १९२७ की बात है। वहाँ पर श्री ईसामसीह तथा ईसाई धर्म की अलौकिक शक्ति की कथा सुनी। श्री एपोलिनियस जो श्री ईसा के समकालीन एक विख्यात योगी थे, उनकी भा विभूतियों की कथा सुनी और यह भी सुना कि ये योगी भारत में ही दीक्षा प्राप्त कर शक्ति सम्पन्न हुए थे। उत्कण्ठा हुई कि कुछ जानूँ, समझूँ। डाक्टर ब्रूअर का "विभूति कोश", श्री निकलसन का "मुसलमानी विभूतियाँ" आदि पुस्तकों के अवलोकन से मेरी यह उत्कण्ठा तीव्रतर हुई। पृथ्वी प्रदक्षिणा को निकल पड़ा। जर्मनी में देखा कि किस प्रकार वहाँ वेदमन्त्रों का वैज्ञानिक निरूपण होता है। ईसाई, मुसलमानी, यहूदी आदि धर्मकेन्द्रों का पर्यटन करता हुआ काशी वापस आया। भान हुआ कि संसार में प्रायः सर्वत्र नैतिक पतन तथा अशान्ति का साम्राज्य है, सच्चा सुख कहीं नहीं। कारण महाधनी देश अमेरिका की तृष्णा, बड़े स्वतन्त्र देश रूस का अपने मत का साम्राज्य विकासवाद, इङ्गलैण्ड की वही पुरानी कुटिल-नीति और भौतिक विज्ञान के नवीन आविष्कारों के विनाशकारी परिणाम आदि। विचार किया कि सच्ची शान्ति केवल आर्य्य आध्यात्मिक विज्ञान से ही मिल सकती है, यत्न करूँ, देखूँ।

काशीपुरी में मणिकर्णिका घाट के उस पार रेती में गङ्गा के तट पर कुटिया में योगसाधन-शक्तिसम्पन्न प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद योगिराज श्री बाबा अवस्थान किया करते थे। वे मेरे पूज्य पिता जी श्री दीवान बालमुकुन्द

जी कपूर थे। मैंने उनसे एक दिन विनम्र भाव से उनकी शरण में आते हुए आत्मोद्धार का उपाय बतलाने की प्रार्थना की। उन्होंने दया करके मानव शरीर के भीतर माया यन्त्र कैसे चल रहा है और साधनानुसार इस त्रिगुणयन्त्र का दीक्षा से कैसे-कैसे परिवर्तन होता है, किस प्रकार क्रम से गुणमुक्त होकर परम आनन्द अथवा मोक्ष प्राप्त हो सकता है यह अपने अनुभव से संक्षेप में बतलाया। उन्होंने यह भी बतलाया कि यह परम आनन्द या अनादि परम सत्य को विश्व के महान् जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री बुद्ध, श्री पतञ्जलि, श्री व्यास, श्री ईसा, अरब के श्री मोहम्मद, फलस्तीन के श्री सालोमन, चीन के श्री कनफ्यूसियस, भारत के श्री नानक, श्री कबीर, श्री रामकृष्ण आदि सन्तों, सूफिओं आदि ने समय-समय पर अपनी भाषा और नवीन शब्दों में, फेर से (देशकाल और पात्र का विचार करते हुए) उसे ही दोहराया है और आगम में भी यह परम सत्य अथवा परम आनन्द नवीन शब्दों में समय-समय पर दोहराया जाएगा। इस संसार में मोक्ष के हेतु अनेक उपाय, अनेक धर्मों ने बतलाए हैं, परंच सर्व साधनों का मूल कुण्डलिनी योग ही है, केवल इसी का ही आश्रय ग्रहण करो।

कुछ समय उपरान्त अनुकूल मुहूर्त मे श्री बाबा ने कृपाकर मुझे आत्म-प्रकाश के लिये स्वयं दीक्षा दी और साधन करने को बताया, जो कि मैं करता रहा हूँ। बाद में उनके मानव शरीर के ब्रह्मीभूत होने पर उन्हीं के आदेशानुसार श्री योगिराज स्वामी श्री श्यामानन्द महोदय (जो अब ब्रह्मीभूत हो चुके हैं) से आगे दीक्षा लेकर सीखा, किया और इन गुरुजनों के आशीर्वाद से कर रहा हूँ।

यह ज्ञान रहे कि मेरा ऐसा सौभाग्य है कि जिस कुल में मैंने जन्म लिया उसी कुल में ६०० वर्ष के कुछ पहले हमारे पूर्वज जिनका नाम हरजी बाबा, केता बाबा, लालू बाबा, गोकुल बाबा, सगे भाई थे जो कि चारों सिद्ध योगी थे। इन्होंने लाहौर, भैरव स्थान के बगल में रक्षाबन्धन

वाले दिन एक साथ जीवित अनन्त समाधि ली थी। उसी समय से, उसी स्थान पर प्रति वर्ष रक्षाबन्धन वाले दिन रखडी का मेला लगता चला आ रहा है (पाकिस्तान बनने के समय तक)। उसी कुल में अब मैं और मेरा अनुज चिरंजीव दीवान रामचन्द्र कपूर "विद्यासागर" "दैवज्ञ" वर्तमान हैं।

मैं योगी होने का दावा नहीं करता पर श्री अखण्ड ब्रह्माण्डनायिका, जगज्जननी, पराशक्ति, योगमाया की असीम दया से जो कुछ मैंने उपर्युक्त श्री गुरुजनों की कृपा दया से सुना, सीखा, किया व कर रहा हूँ उसी को साधकों के हितार्थ **"जीवन विज्ञान अथवा कुण्डलिनी योगतत्त्व"** में संक्षिप्त तथा सरल पुस्तकाकार रूप में साधकों के कर-कमलों में अर्पण करने में समर्थ हो रहा हूँ। आदि पराशक्ति विभिन्न रूप से प्रस्फुरित हो अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य करवाती रहती हैं। उसकी लीला अपरम्पार है। यह उसी की अदम्य इच्छा का फल है कि मेरे ऐसे यन्त्र लगे पुतले द्वारा इस गुह्यतम विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। जो भी लिखा गया है उसकी तुष्टि के लिए जिन-जिन सद्ग्रन्थों से उद्धरण किया है उन सब का तत्तत् स्थानों पर नाम निर्दिष्ट कर दिया गया है। ये ग्रन्थ हम लोगों के लिये हमारे पूज्य महर्षियों की अमूल्य देन हैं। मैं उनके लिए सादर श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित करता हूँ।

यह संसार क्या है ? कैसे बना ? मैं (आत्मा) क्या है ? कहाँ से आया तथा मरने के बाद कहाँ जाता है ? और कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है ? इसी की तथ्य व्याख्या सूक्ष्म रूप से इस छोटी सी पुस्तिका में की गई है।

ऐसा कहा जाता है कि प्राचीनतम काल में एक ही वेद यजुर्वेद नाम का था, जिसे श्री व्यास जी ने चार विभाग कर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को अपने चार प्रिय शिष्यों श्री पैल, श्री वैशम्पायन, श्री जैमिनि और श्री सुमन्तु को क्रम से पढ़ाया था।

—(कूर्म पुराण ४६ अध्याय)

कुण्डलिनी योग का निर्देशन वेदों में है (ऋक् मं० १०, सू० १००, अ० ६, मं० ७) और उसका साधन अंश तन्त्रों तथा तान्त्रिक योग ग्रन्थों

में पाया जाता है। मङ्गलमय शिव ने तन्त्रों को प्रकट किया इसलिए तन्त्रों को पञ्चम वेद भी कहते हैं (आगमः पञ्चमो वेदः) और उसी समय से शिवजी को पञ्चवक्त्र या पञ्चानन भी कहते हैं। तन्त्र वेदों का साधन अंश है और इसके मुख्य दो विभाग (आम्नाय) माने जाते हैं। (१) उद्ध्वाम्नाय (२) अधोम्नाय। उद्ध्वाम्नाय तन्त्रों में मुक्ति मार्गीय कुण्डलिनी योग की सात्त्विक साधना है। अधोम्नाय तन्त्रों में भी रहस्य छिपे हैं, जो कि निम्नमार्ग से लौकिक कर्म और बाह्य विभूतियाँ देनेवाले हैं।

"नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु"—

(श्रीमद्भागवत स्कं० ११, अ० ५, श्लो० २८)।

वाराहीतन्त्रानुसार तन्त्रों के मुख्य तीन भेद हैं। आगम, यामल और (डामर) तन्त्र। महासिद्धसार तन्त्रानुसार, विष्णुक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र, रथक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र और अश्वक्रान्ता के लिए ६४ तन्त्र हैं। इन तन्त्रों की श्लोक संख्या सब मिलाकर नौ लाख है (वाराही तन्त्र)। इनके इतर कल्पभेद से जो सब तन्त्र कहे गये हैं वे सब पाखण्डियों के मोहन के लिए हैं और उनसे कोई फल नहीं होता।

"कल्पभेदेन तन्त्राणि कथितानि तु यानि च।
पाखण्डमोहनायैव विफलानीह सुन्दरि!॥"

(महाविश्वसार तन्त्र)

आगमतत्त्वविलास में ८३ प्रमुख तन्त्रों के नाम और महासिद्धिसारस्वत तन्त्र में ६ प्रमुख और ८३ अन्य तन्त्रों के नाम बताए हैं। वाराहीतन्त्रानुसार उपर्युक्त से इतर जैमिनि, वसिष्ठ, कपिल, नारद, गर्ग। पुलस्त्य, भार्गव, सिद्ध, याज्ञवल्क्य, भृगु, शुक्र, वृहस्पति आदि महामुनियों ने बहुत से उपतन्त्र तथा मन्त्रकोशों का सम्पादन किया है।

(हिन्दी विश्वकोष में तंत्र)

प्रमुख बौद्ध गुरु "श्रीवज्रसत्त्वशुद्ध" ने ७२ बौद्ध तन्त्रों का सम्पादन किया। तिब्बत में तन्त्रों को ऋग्युद कहते हैं और इनके ८७ भेद हैं। चीन धर्म के प्रमुख तन्त्र तिब्बतीय तन्त्रों से अनुवादित हैं।

तन्त्रशास्त्रों का वास्तविक रहस्य या गूढ़ाशय का विचार और उसकी शिक्षा-दीक्षा जो भी केवल अपनी विद्या के बल से (शाब्दिक अर्थ द्वारा) करते हैं, वे अनर्थ करते हुए नरकगामी होते हैं, क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञान का अर्थ वैज्ञानिक भाषा से ही होता है और वह गुरुगम्य है। पर खेद है कि कुछ पढ़े लिखे नामधारी बाह्यतत्त्वामोदी पण्डित तन्त्रों के यथार्थ गूढ़ रहस्य को सिद्ध गुरु योगी से न जानकर केवल अपने पाण्डित्य के बल पर घोर अनर्थ और अपने कुकृत्यों से तन्त्रों को बदनाम करने का कुप्रयत्न करते हैं (भावचूडामणि) :—

"विद्यावलेन यः कश्चित् आगमार्थं विचारयेत्।
परान् दिशति धर्म्मार्थं स यमेन्नरके ध्रुवम्॥"

(भैरवडामर)

"गूढाशयं शङ्करस्य को जानाति महीतले।
तद्वेत्ति कश्चित् कुत्रापि स साक्षाद्गिरिशांशवत्॥"

(यामल)

सर्वतान्त्रिक साधनाएँ चाहे वे उर्द्ध्वाम्नाय या अधोम्नाय की हों, बिना पञ्चमकार के सिद्ध नहीं होतीं, व तत्त्वविद्या, ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं होता:—

अथ पञ्चमकारेण सर्वां प्राप्नोति विद्यां।
नान्यः पन्था विद्यते मोक्षाय ज्ञानाय॥

(अथर्ववेद)

"मद्यं मासञ्च मत्स्यञ्च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्॥"
"पञ्चतत्त्वमिदं देवि! निर्वाणमुक्तिहेतवे।"

(यामल)

मद्यं मांसं तथा मत्स्यः मुद्रा मैथुनमेव च ।
एतैर्मामर्च्चयेद्भक्त्या तस्य तुष्टोऽस्मि सर्वदा ।।

(कैलाशतंत्र)

पञ्चमकार का शाब्दिक अर्थ कदापि न मानने के लिए कुलार्णव तन्त्र-२ उल्लास में स्पष्ट कहा है और यह भी बताया है कि यदि मद्यपान करने से ही मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सके तो संसार के सर्व मदिरा पान करने वाले पामर सिद्ध हैं। यदि मांस खाने से पुण्य हो तो संसार के सर्व मांस भक्षी पुण्यवान् हैं। यदि स्त्रीसंभोग द्वारा मोक्ष हो तो संसारी जन सभी मुक्त हैं।

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत वै ।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः ।।
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत् ।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि ।।
स्त्रीसंभोगेन देवेशि ! यदि मोक्षं भवेद्धि वै ।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्युः स्त्रीनिषेवणात् ।।

(कुलार्णवतंत्र)

पञ्चमकार की उत्पत्ति पञ्च प्राण से हुई—

"नामान्येतानि तत्त्वानां पञ्च प्राणोद्भवानि ते ।

(कैलाशतन्त्र)

साधक जानते हैं कि पञ्चमकार का गूढार्थ क्या है। फिर भी यह अति संक्षेप में नीचे लिखा जाता है। क्योंकि भाषा द्वारा इसका निगूढ तत्त्व लिखना असम्भव-सा है। यह तो गुरुगम्य है ही और केवल कठोर योग-साधना द्वारा ही जाना जा सकता है।

पञ्चमकार

(१) पञ्चमकार का पहला तत्त्व है "मद्य"। जिस समय साधक कुण्डलिनी योगद्वारा षट् चक्र का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र सहस्रार में पहुँचता है उस समय जो प्रमदन ज्ञात होता है, उसी समय सोम कमल चक्र से सफेद रंग का मधुर अमृत बहता है, साधक उसी के पान करने को "मद्यपान" योग्य "सुरा" कहते हैं।

"ब्रह्मस्थानसरोजपात्रलसिता ब्रह्माण्डतृप्तिप्रदा।
या शुभ्रा सुकला सुधाविगलिता सा पानयोग्या सुरा॥
(भैरवयामल)

"व्योमपङ्कजनिष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः॥"
"सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्राद् वरानने!।
पीत्वानन्दमयीं तां यः स एव मद्यसाधकः॥"
(आगमसार)

(२) पञ्चमकार का दूसरा तत्त्व है "मांस"। जो साधक वाक्य संयम द्वारा आत्म संयमी होकर (आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि) पशुओं को ज्ञान रूपी तलवार द्वारा बलि प्रदान करता हुआ स्वकृत सर्वकर्म परब्रह्म में समर्पण करता है उसे ही "मांस" साधक कहते हैं।

"काम-क्रोध-सुलोभ-मोह-पशुकांश्छित्त्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं भुञ्जन्ति तेषां बुधाः॥
"पुण्यापुण्योभयं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं स मांसाशी निवेद्यते॥"
(भैरवयामल)

(३) पञ्चमकार का तीसरा तत्त्व है "मत्स्य"। जो साधक मन आदि सब इन्द्रियों को वश में करके गङ्गा (इड़ा), यमुना (पिङ्गला) नदियों (नाड़ियों) के बीच जो दो मछलियाँ (श्वास-प्रश्वास) चरती हैं, उसको जो भक्षण (प्राणायाम में इन श्वास-प्रश्वास का संयम कर सकना) कर सकता है वही "मत्स्य" साधक है।

"मनसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
स मीनाशी भवेद् देवि ! इतरे प्राणघातकाः॥"
"गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु स भवेत् मत्स्यसाधकः॥"

पञ्चमकार का चतुर्थ तत्त्व है "मुद्रा"। सहस्रार महापद्म के अन्तर्गत मुद्रिता कर्णिका के भीतर (द्विदलपद्म के मध्य में) जो विशुद्ध पारे के समान आत्मा है और जिसका तेज करोड़ों सूर्यों के बराबर होने पर भी करोड़ों चन्द्र के समान सुशीतल है, यह जब महाकुण्डलिनी से युक्त होता है तब उस स्थिति का ज्ञान जो साधक योगबल से प्राप्त करते हैं उसको ही "मुद्रा" साधक कहते हैं।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिता चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि ! केवलं पारदोपमः॥
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकोटिसुशीतलः।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः॥
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते॥"

(यामल)

(५) पञ्चमकार का पाँचवाँ तत्त्व है "मैथुन"। सहस्रार के ऊपर वाले बिन्दु (अथवा लिंग) परमात्मा के साथ जो साधक योग द्वारा कुण्डलिनी +

जीवात्मा को मिलता है वह "मैथुन" तत्त्व है। योगी लोग इसी क्रिया में रात दिन रत रहते हैं:—

"सहस्रारोपरि विन्दौ कुण्डलीमिलनाच्छिवे।
मैथुनं परमं दिव्यं यतीनां परिकीर्तितम्॥
या प्रोक्ता कुण्डली शक्तिर्लिङ्गेनैव स्वयंभुवा।
रमतेऽहर्निशं यत्र पञ्चमी स्यादुदाहृता॥

(यामल)

इसी पञ्चमकार के सिद्ध होने पर महानिर्वाण (११ पटल) तन्त्रानुसार निम्नलिखित सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं:—

(१) मद्यपान से अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

(२) मांस भक्षण से नारायण के समान होता है।

(३) मत्स्य भक्षण से कालिका का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

(४) मुद्रा सेवन से विष्णु के समान होता है।

(५) मैथुन द्वारा महायोगी सदा शिव के समान होता है।

उपर्युक्त तन्त्रों का विवेचन अति संक्षेप में लिखा है कारण इनका निगूढ़ तत्त्व शब्दों से परे है।

अन्त में दयालु साधक पाठकों से विनम्र निवेदन है कि इस पुस्तिका में जो त्रुटियाँ (छपाई आदि की भी) रह गई हों वह मेरी हैं और उन्हें कृपाकर सँभाल लें और मुझे सूचित करने का कष्ट करें। यदि पराशक्ति की इच्छा से साधक पाठकों की इस ओर अभिरुचि हुई तो इसे और अधिक उपादेय बनाने के हेतु "जीवन विज्ञान" का पूर्ण पाठ परिवर्द्धित पुस्तक निकलवाने का प्रयास वह स्वयं करावेगी।

सर्वं ब्रह्मणि सर्वत्र ब्रह्मैव परिपश्यति ।
ज्ञेयः स एव सत् कालो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥

***

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म्मसमाधिना ॥

गली योगिराज-
दीवान बालमकुन्द कपूर,
वाराणसी ।
श्रीगंगादशहरा सं० २०२१
ता० ११ जून १६५४ ई०

कृपाकांक्षी—
गोकुलचन्द कपूर

जीवन विज्ञान माला–१

कुंडलिनी योगतत्त्व

ॐ

॥ ॐ षट् श्रीमद् गुरवे नमः ॥ यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

(द्वितीय संस्करण का निवेदन)

संसार के विद्वान दार्शनिक सर्व सम्मत हैं कि आर्य्य जीवन-विज्ञान का पुञ्ज वेद हैं और उसकी व्याख्या तथा साधना उर्द्ध्वाम्नाय तंत्रों में है। वाराही तत्र में तंत्रों के नाम और उनकी श्लोक संख्या बतलाई है, और उसी प्रकार उनका आगम तत्त्व विलास में भी उल्लेख है। इन सब की सूची देखने के लिए कृपया बंगला विश्वकोष तथा उसका अनुवाद हिन्दी विश्व कोष में देखिए। जीव को धर्म व सच्ची शान्ति योगारूढ़ होने पर प्राप्त होती है। इसी की साधनक्रिया उर्द्ध्वाम्नाय तंत्रों में है जिससे कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। यह भ्रान्त धारणा है कि योग गार्हस्थ्य जीवन में रह कर करना कठिन है। भूत तथा वर्तमान की ओर देखने से ज्ञात हो जाएगा कि हमारे भारत में अनेकानेक सिद्ध योगियों ने गार्हस्थ्य जीवन में रह कर परम पद प्राप्त किया है। चित्त को स्थिर करके योगमार्ग में तंत्र उपदिष्ट विशेषज्ञ गुरु प्रणाली द्वारा अभ्यास कर धीरे-धीरे अग्रसर होने पर सारे रहस्य क्रमशः प्रत्यक्ष होते हुए स्वज्ञान परमपद प्राप्त होता है। इस परमपद प्राप्ति हेतु, ज्ञानमार्ग, भक्ति-मार्ग, और कर्म (योग) मार्ग, अधिकारि भेद से अलग अलग रास्ते हैं। इनमें योगमार्ग आत्मानुसंधान के लिए श्रेष्ठ तथा अपूर्व प्रसिद्ध है। केवल चिन्तन द्वारा इस योगमार्ग से परमपद प्राप्त नहीं होता वरन् चिन्ताशून्य होकर कर्म करना होता है। मार्ग चुनने के लिए विशेषज्ञ गुरुयोगी की

आवश्यकता है। वास्तव में देखा गया है कि जिसे विवेक, वैराग्य, भक्ति नहीं है फिर भी परमपद प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे लोगों के लिए भी योगाभ्यास श्रेष्ठ है। ऋ० १० मण्डल "देवीसूक्त" में कहा है कि "सबका पिता मैं हूँ....... मैं चैतन्यरूप से इस त्रिभुवन को व्याप्त कर अवस्थित हूँ तथा परा शक्ति रूप में सब में अनुप्रविष्ट हूँ—यही जगन्माता सब के प्राण हैं। प्राण ही चराचर वस्तुओं का स्वामी है और इस प्राण का स्थिर भाव ही "आत्मा" और यही परमब्रह्म—ईश्वर है क्योंकि आत्मा सारी उपाधियों से विनिर्मुक्त है और इसी की उपासना गायत्री है तथा यही कुण्डलिनी है।" आत्म-ज्ञान बिना सब झूठा (कबीर)।

ईश्वरप्रणिधान–तस्य वाचकः प्रणवः (पा० यो सूत्र १, २·–१, २७) अर्थात् ईश्वर में प्राणिधान से–उसका वाचक प्रणव ॐ कार है (श्रीमद्-भगवद्गीता ८–१३) याने ईश्वर अपनी पराशक्ति (जो अर्धमात्रा में है) में ओतप्रोत अकर्ता-सृष्टिकर्ता + पालनकर्ता + तथा मोक्षकर्ता है। इसका संक्षिप्त विवरण पृष्ट ३६ में देखिए। इसी को अवतारी ईसा लार्ड क्राइष्ट ने पवित्र बाइबिल में गाड (God) त्र्यक्षर मे कहा है। इसी त्र्यक्षर (God) की व्याख्या सेंटपाल ने सृष्टिकर्ता पालनकर्ता तथा मोक्षकर्ता (Generator-Operator Demiser) की है। तथा इसी से क्राइष्ट मुझ में निवास करता है। इसीलिए इसाई साधु तीन गांठ वाला गंडा गले में धारण करते हैं। इसी को अवतारी पैगंबर मोहम्मद ने पवित्र कुरान (सूरे आल इमरान-आरंभ रकू) में त्र्यक्षर "अलिफ + लाम + मीम" अलाह कहा है, इसके अतिरिक्त कोई पूजित नहीं और उसी के करीब हां (सूरे अलक १६ आयत १ रकू)। यही तांत्रिकों का कामकला त्रिकोण है। इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना, इच्छा-क्रिया-ज्ञान, ध्याता-ध्यान-ध्येय, स्थूल-सूक्ष्म-कारण आदि। ईश्वर-परमात्मा, आत्मा और जीवात्मा एक है (गोरक्षनाथ सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति तथा गोरक्ष वचन संग्रह)।

"विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये"

(योगबीज-उपनिषद्)

अतः योग के बिना ज्ञान से किस प्रकार मोक्ष (ईश्वरत्व) प्राप्त कर सकता है। इसी तरह मुण्डकोपनिषद् तथा शिव संहिता (१ पटल) में योग ही को ब्रह्मविद्या या पराविद्या कहा है। महात्मा कबीर ने कहा है :—

योग जगा अनहद धुनि सुनिके,
घट ही में काशी प्रयाग द्वारिका।
घट ही में ठाकुरद्वार मक्का,
घट ही में है ओंकार सोंह धुन।
घट ही में हीं रहयों अनलहका॥
(कबीर शब्दावली)

इन यौगिक साधनाओं का प्रत्यक्ष पञ्चभूतात्मक स्थूल शरीर द्वारा इसी के भीतर सूक्ष्म शरीर जिसे लिङ्ग शरीर (Astral body) भी कहते हैं पर प्रभाव पड़ता है। पञ्चदशी में लिखा है कि बुद्धि, अहंकार, मन, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ तन्मात्रायें इन सूक्ष्म पदार्थों से गठित सूक्ष्म शरीर ही लिङ्ग शरीर है। मृत्यु के समय यह लिङ्ग शरीर स्थूल शरीर को छोड़कर अलग हो जाता है अतएव योगी इस लिङ्ग शरीर की शुद्धि भूत-शुद्धि क्रिया द्वारा करते हैं क्योंकि भूत शुद्धि के बिना यह शरीर देवशरीर में परिणत नहीं होता। इसकी क्रिया सूक्ष्म, जटिल और गुरुगम्य है (रुद्र यामल)। इसी की युक्तियुक्त साधना से लिङ्ग शरीर को जीवित अवस्था में स्थूल शरीर से बाहर किया जा सकता तथा परकायाप्रवेश किया जा सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदों यथा (१) ऋग्वेदीय—ऐतरेय, कौषीतकि (२) सामवेदीय—केन, छान्दोग्य (३) शुक्ल यजुर्वेदीय—ईश, वृहदारण्यक (४) कृष्ण यजुर्वेदीय—कठ, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर (५) अथर्व-वेदीय—प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य आदि में मुक्ति का उपदेश दिया है। वेदान्त दर्शन के ३ अध्याय "साधन" में जीव और ब्रह्म के लक्षणों का निर्देशन करके मुक्ति का उपदेश दिया है। सांख्य दर्शन के कर्ता कपिल ने कपिल सूत्र में २५ तत्त्व गिनाये हैं पर वह ईश्वरवादी नहीं समझा जाता।

योगदर्शनकर्ता पतञ्जलि ने आत्मा और जगत के सम्बन्ध में समन्वय दृष्टि से कपिल के २५ तत्त्वों का प्रतिपादन तो किया और साथ में २६ वाँ तत्त्व ईश्वर माना है तथा मोक्ष या गुह्यतम ज्ञान या आत्म साक्षात्कार का एक मात्र उपाय योग द्वारा उसके साधन—अनुशासन को माना है। योग से चित्त की वृत्तियाँ निरोध होती हैं। (पा० यो० सू० १–१२)। यों तो ये वृत्तियाँ असंख्य हैं पर सिद्ध योगियों ने इनका वर्गीकरण (१) प्रमाण (२) विपर्यय (३) विकल्प (४) निद्रा (५) स्मृति, तथा इनको पतञ्जलि ने (१) विक्षिप्त (२) क्षिप्त (३) मूढ़ (४) निरुद्ध और (५) एकाग्र, किया है। ये वृत्तियाँ योग की क्रिआओं द्वारा ही निरोध हो सकती हैं तथा निरोध होने पर आत्म-साक्षात्कार होता है।

अतः योग्य ब्रह्मनिष्ठ योगी गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त कर उन ही के सान्निध्य में उनसे मनुष्य देह परिचय (Anatomy cum Physiological-Psychology) नाडी विज्ञान (Neuro-anatomy), तथा परा मनोविज्ञान (Para-Psychology) को भलीभाँति जान व समझ-बूझ कर समन्वय दृष्टि व श्रद्धा से ही योग की प्रथम स्थूल क्रिआओं, यम, नियम, आसनादि का अभ्यास अनन्य चित्त होकर क्रमशः साधना में अग्रसर होना चाहिए अन्यथा अग्रसर होना कठिन है। **केवल पुस्तक की विद्या पढ़ कर अथवा अनभिज्ञ के कहने पर कोई भी यौगिक क्रिया करना सर्वथा हानिकारक है।**

(षट् चक्र निरूपण)

इस पुस्तक में सिद्ध योगी गुरु तत्त्व कई स्थान पर प्रयोग में आया है। यह तत्त्व स्वतंत्र न होते हुए भी स्वतंत्र है। इस गुरु और शिष्य तत्त्व की जांच के लिए कई तंत्र के ग्रंथ उपलब्ध हैं, कृपया उनसे सहायता ले कर ही दीक्षा ग्रहण करें। योग क्रिया में ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध योगी गुरु की परम आवश्यकता जीवन पर्यन्त रहती है। पठित व्यवसायी नामधारी गुरु से शिष्य को निश्चय ही हानि उठानी पड़ती है अतएव खूब सावधान रहैं।

(अद्वयतारकोपनिषद)

आधुनिक प्रथानुसार सहायक पुस्तकों की अलग सूची न देकर यथा स्थान ही उनका नाम दे दिया है। अन्त में दयालु साधक पाठकों से पुनः विनम्र निवेदन है कि जो कुछ मैंने अपने गुरुदेव से सीखा व करता हूँ उसी के आधार पर यह छोटी पुस्तिका लिखी है और जो वेद मंत्रों, योग तथा तंत्र ग्रंथों के अर्थ करने में त्रुटियाँ इसमें रह गई हों (छपाई आदि की भी) वह मेरी हैं तथा उसे दया कर सँभाल लें और मुझे सूचित करने की कृपा करें। यह पुस्तिका साहित्यिक शैली में न लिख कर यौगिक शैली में ही लिखी है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

-❀○❀-

अगम अगोचर गमि नहीं तहाँ झलके ज्योति।
तहाँ कबीरा वन्दगी पाप पुन्य नहिं होत॥
कबिरा धारा अगम की सतगुरू दियो लखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करो स्वामी संग लगाय॥
उन्मन लागी शून्य में निशदिन रह गलतान।
तन मन की कछु सुधि नहीं पाया पद निरवान॥

ॐ भद्रन्नो अपि वातय मनः॥ ॐ तत् सत्॥

गली योगीराज–
दीवान बालमकुन्द कपूर,
वाराणसी–१ (उ० प्र०)
वसन्त पञ्चमी २०२५

कृपाकांक्षी
गोकुलचन्द कपूर

❀ ॐ तत् सत् ❀

सा घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ (ऋग्वेद मं० १, सू० ५, मं० ३)

विषय-सूची

विषय | पृष्ठाङ्क

विषय पृष्ठाङ्क

अध्याय—६

अष्टाङ्ग योग, कुण्डलिनी उत्थान क्रिया।

स्थूल क्रिया

सूक्ष्म क्रिया

———

ॐ तत्सत् ।

जीवन विज्ञान माला-१

कुण्डलिनीयोग तत्त्व

अखण्डं सच्चिदानन्दं निर्विकारं परात् परम् ।
वन्देऽहं सकलाधारं श्रीगुरुं श्रीजगन्मयम् ।।
बहुयत्नैः समाहृत्य साधकानां हितार्थकम् ।
कुर्वे जीवनविज्ञानं कर्पूरश्चन्द्रगोकुलः ।।

विषय प्रवेश

अनादि काल से संसार के प्रत्येक विज्ञ तथा विचारशील मनुष्य, विशेष रूप से आर्य्य, यह विचार करते चले आ रहे हैं कि यह संसार क्या है ? तथा कैसे बना ? मैं (आत्मा) क्या वस्तु है ? कहाँ से आया है ? और कैसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है ?

मानव-सभ्यता काल से लेकर आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक काल तक (कुछ मतभेद होते हुए भी) सर्व विद्वान् दार्शनिक सम्मत हैं कि आर्य विज्ञान का पुञ्ज वेद है तथा उसकी व्याख्या उदर्ध्वाम्नाय तंत्रों तथा योग ग्रन्थों इत्यादि में है ।

आर्य सद्ग्रन्थों से यह विदित होता है कि जगत् के रचयिता ने संसार में जितनी वस्तुएँ रची हैं उनमें से मनुष्य रूप ही उसने सम्पूर्ण

रखा है। मनुष्य रूप सम्पूर्ण इसलिये कहा गया है कि इसी देह से साधना द्वारा, मनुष्य अपना स्वरूप जानकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है (वेद, ईशावास्योपनिषद् , तन्त्र, गरुडपुराण, श्रीमद्भागवत, रामायण इत्यादि) और इसी तथ्य की तत्त्व रूप से व्याख्या इन पंक्तियों में की गई है।

मानव-सभ्यता काल से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक मशीनयुग तक संसार के प्रत्येक धर्मों के ऋषिगण सर्व सम्मत हैं कि संसार के तथा मनुष्य देह के मुख्य तत्त्व और उत्पत्ति के कारण (१) वायु (२) अग्नि (३) जल (४) पृथ्वी हैं। इनका मूल विभागीकरण वेदों में निम्नलिखित पाया जाता है।

(१) वायु के १०१ मुख्य विभाग
(२) अग्नि के २१ मुख्य विभाग
(३) जल के १००० मुख्य विभाग
(४) पृथ्वी के ६ मुख्य विभाग

जोड़ ११३१ मुख्य विभाग

वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन चार तत्त्वों का आदि स्वरूप, मूल स्रोत व विश्लेषण, सूत्र रूप से चारों वेदों में निम्नांकित है :—

(१) यजुर्वेद— १०१ शाखायें-जिनमें वायु जाति भेद का मुख्य विभागीकरण है।

(२) ऋग्वेद— २१ शाखायें-जिनमें अग्नि जातिभेद का मुख्य विभागीकरण है।

(३) सामवेद— १००० शाखायें-जिनमें जल जातिभेद का मुख्य विभागीकरण है।

(४) अथर्ववेद— ६ शाखायें-जिनमें पृथ्वी जातिभेद का मुख्य विभागीकरण है।

जोड़—११३१ शाखायें—

प्रत्येक वेद से क्रमशः केवल जल, अग्नि, वायु और पृथ्वी (मिट्टी) का ही तात्पर्य नहीं समझना चाहिए। हमारे ऋषियों ने वेदों का कितना सूक्ष्म अध्ययन किया है यह भी उपर्युक्त से स्पष्ट है। हमारे अभाग्य हैं कि वेदों की उपर्युक्त ११३१ शाखाओं में से अब कुछ ही उपलब्ध हैं। हर एक विज्ञानशास्त्र की तरह वेदों का अर्थ प्राचीन काल में १८ निरुक्तों से होता था (शुक्र नीति अ० ४ प्र० ३)। इस समय केवल एक निरुक्त यास्कीय ही हमें उपलब्ध है। उदाहरण स्वरूप हमारे वेदों में १८ प्रकार के वायुयानों का उल्लेख है, जिसके द्वारा हमारे ऋषि बिना किसी उच्चतम सीमा के अन्य मण्डलों तक आ जा सकते थे। इन वायुयानों के प्रकरण को कुछ काल पूर्व तक हमारे आंग्लभाषा पठित भारतीय कथा ही समझते थे। इस समय तक पाश्चात्य वायुयान-विज्ञान ने केवल दो प्रकार के वायुयानों का आविष्कार किया है (१) हवा से हल्का (२) हवा से भारी। इसी तरह रडार इत्यादि का सूत्र, महर्षि भारद्वाज ने अपने यन्त्र सर्वस्व में किया है। पर यह विषयान्तर होने के कारण यहाँ छोड़ दिया जा रहा है। आधुनिक वैज्ञानिकों को आशातीत सफलता मिलेगी यदि वे तत्त्वों के आधार पर वैदिक मन्त्रों से वैज्ञानिक अन्वेषण करें। इन विषयों की ओर भारत सरकार को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए और तभी भारत पुनः जगत् का गुरु हो सकता है।

अध्याय १

सृष्टि क्रम—यह संसार कैसे बना ? और मैं (आत्मा) कैसे तथा कहाँ से आया ?

यह जीवन विज्ञान इतना सूक्ष्म है कि यह सांसारिक किसी भी यन्त्र द्वारा नहीं जाना जा सकता। इसके जानने का मार्ग केवल मन द्वारा, वैज्ञानिक तत्त्वों के आधार पर वैदिक मन्त्रों में ही मिल सकता है।

१—कि ꣳ स्विद्वनङ्कऽउसऽवृक्षऽआसपतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदुतद्यदद्ध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥
(यजुर्वेद अ० १७ मं० २०)

सृष्टि से पहले, प्रकृति, जानने के अयोग्य (तुच्छ) होकर अंधकार में थी।

(ऋग्वेद, अ० ८, मं० १०, अ० ११, सू० १२६)। (मनु० अ० १ श्लो० ५)

यह संसार परा पुरुष और परा प्रकृति के संयोग से-जो दोनों अभिन्न एक ही हैं-उत्पन्न हुआ और उसीका अंश मैं (आत्मा) पञ्चमहाभूतों को लेते हुए इस जगत् में अवतीर्ण हुआ। यथा :—

१—अक्षर मण्डल या परमाकाश या अव्यय मण्डल या सत्य लोक या ज्ञान लोक इत्यादि अनिर्वचनीय नामाङ्कित अक्षर मण्डल—

२—ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्न्येस्मिन् देवा अधिविश्वेनिषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥
(ऋग्वेद अ० २ अ० ३ सूक्त १६५ मं० २६।)

संसार के सृजनहार परब्रह्म (परा शिव) में उसकी इच्छा शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। (एकोऽहं बहुस्याम्) मैं एक से अनेक होऊँ (तदैक्षत

बहुस्यां प्रजायेय)। छां० उ० ५-२-३)। इससे दिव्य लहरें उत्पन्न हुईं जिन्हें उसकी क्रियाशक्ति कहा जाता है। परब्रह्म का ही अंश जिसे आत्मा कहते हैं और जो कि स्वयं ज्ञानस्वरूप है, इन दिव्य लहरों के कारण इनमें ओत-प्रोत हुआ। अक्षर मण्डल में ही एक गतिमान् तत्त्वातीत ज्योतिष्मान् बिन्दु से मिला।

(क) इस ज्योतिष्मान् बिन्दु को तपःलोक या विराट् नाम से भी कहा जाता है और इसकी स्तुति वेदों में तथा श्रीभगवद् गीता में भी है:—

३—विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥
(यजुः अ० १७ मं० २६, गीता अ० ११)

इस मिलन स्वरूप कम्पन होने से अलगाव की लहरें चहुँ ओर उत्पन्न हुईं, जिससे यह ज्योतिष्मान् बिन्दु, जिसमें आत्मा, इच्छा, क्रिया और ज्ञान शक्तियाँ ओत-प्रोत हैं, स्वयम्भू मण्डल में गिरकर उसमें सर्वत्र व्याप्त हो गया।

४—य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरां आविवेश॥
(यजु० अ० १७ मं० १७)

यह उपर्युक्त अक्षर मण्डल क्या है? यह कोई नहीं जानता। चारों वेद, अठारहों पुराण व तन्त्र इत्यादि में इसका कोई विशेष वर्णन नहीं मिलता। वेदों ने इसी को "नेति नेति" के नाम से कहा है; तन्त्रों ने इसी को "नेति नेति च वाक्यार्थैर्बोधितः सकलागमैः" कहा है। तन्त्र कहते हैं कि "इत्थमहं वेद्मि"।

२—स्वयम्भू मण्डल या जनःलोक—

यह स्वयम्भू मण्डल हमारी पृथ्वी से १६,०००,०००,०००,०००,००० सोलह पद्म मील (दो पद्म योजन) की दूरी पर है।

५—प्राप्तश्च बिभ्रते को मे स्वयंभूपद द्वितीययोजने।
करभ्रत विराजते विभ्यश्च तेदत्तानते ॥
(ऋ० अ० ५ सू० ७ म० ८)

उपर्युक्त गोलाकार ज्योतिष्मान् विन्दु स्वयम्भू मण्डल में गिर कर इसमें सर्वत्र व्याप्त होने के योग से, हमारा ब्रह्माण्ड तथा अनेक कोटि दूसरे और ब्रह्माण्ड वने।

६—विश्वेभ्यो हित्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नः साम्नः कवि।
स ऋणचिद्दणया ब्रह्मणस्पतिद्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर तरी ॥
(ऋ० मं० २ सू० २३ मं० १७)

७—अतो विश्वान्यद्भूता चिकित्वां अभिपश्यति कृतानि वाच कृत्वा।
(ऋ० मं० १ सू० २५ मं० ११)

८—अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्ततः स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटि ब्रह्माण्डानि ज्वलन्ति। (महानिर्वाणे उ० ६)।

और इसी की तन्त्रों में "अनेक कोटि ब्रह्माण्डनायिके जगदम्बिके" नाम से अर्चना की है। प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् मिल्टन ने ऐसा ही कहा है "(Other Suns with their attendani worlds thou may' st descry)"। इसी तरह इंगलैण्ड के प्रसिद्ध गणितज्ञ ज्योतिषी श्री रीचार्ड, ए० प्रोक्टर ने, अपनी दो अन्वेषित पुस्तकों में (१) हमारे ब्रह्माण्ड के इतर दूसरे ब्रह्माण्ड (Other worlds than ours) (२) हमारे सूर्य्य के इतर दूसरे सूर्य्य (Other Suns than ours) हमारे वेद और शास्त्रों की इन बातों को माना है। फ्रान्स के गणितज्ञ दार्शनिक फोनियर डी० अलवी ने भी इसी तरह अपनी अन्वेषित पुस्तक "दो नये ब्रह्माण्ड" में लिखा है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पाँच मण्डलों (चक्रों) द्वारा सञ्चालित होता है :—

९—पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते स नाभिः॥
(ऋग्वेद मं० २ सू० २० मं० १३)

स्वयम्भू उसका प्रथम मण्डल चक्र है। इन पांच मण्डलों (चक्रों) के नाम क्रमशः (१) स्वयम्भू (२) परमेष्ठी (३) सूर्य (४) चन्द्र और (५) पृथिवी हैं।

प्राणाग्नि, आत्मा के उपर्युक्त ज्योतिष्मान् विन्दु के साथ स्वयम्भू मण्डल में गिर कर, ओत-प्रोत होने से, जो रश्मियाँ अथवा लहरें फैलीं, जिन्हें इस मण्डल के द्रव्य में शब्द, व्योम या आकाश या महावारुणि (Ether) कहते हैं, मिल गईं और उसमें गति उत्पन्न हुई। इस गति से इस द्रव्य और उसके गुण के साथ आत्मा परमेष्ठी मण्डल में अवतीर्ण हुई।

१०—स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिवर्चोदा असि वर्चो मे देहि।
(यजु० अ० २ मं० २६)

३—परमेष्ठी मण्डल या महःलोक या गो लोक या सोम समुद्र—

यह परमेष्ठी मण्डल सोम का एक महासमुद्र है जिसका रङ्ग दैवी गहरा नीला है तथा इसका तेज परम तेजस्वी अरबों सूर्य्यों के समान है :—

११—प्रयन्ते चन्द्रमसि पिप्रतमं रश्मयो परितौ।
सर्वस्मिन् भूयिष्ठायाम् प्रत्यञ्ची मनसस्पितौ॥
(सामवेद ना० ण० शा० ५-६-७)

इसकी दूरी स्वयम्भू मण्डल से २४ करोड़ मील है। इसी को यजुर्वेद में गोलोक कहा है :—

१२—जातेधामान्युष्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिश्रृङ्गाः अयासः
(य० अ० ६ मं० ६)

और इसी की प्रधान शक्ति का नाम गोविन्दु है।

१३—चिरस्मै सप्तधेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि
चत्वार्य्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदतैरवर्द्धत।
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुद्रप्स आयुधानि विभ्रत
अपाभूर्मि सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति।
(सामवेद प्र० ५ अ० ६ मं० ३)

और इसी से निकलनेवाली रश्मि को सामवेद में गो पदार्थ कहा है। इस गो पदार्थ के १६ विद्युत् सूक्ष्म अथवा कलायें हैं जो कि सामवेद के अनुसार इस परमेष्ठी मण्डल का सञ्चालन करती हैं :—

१४—गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्य विद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः।
त्व सुवीरो असि सोम विश्वक्ति त्वा नर उपगिरेम आसते।
(सामवेद)

आत्मा जब उपर्युक्त परमेष्ठी मण्डल में आया तो उसका १६ विद्युत सूक्ष्मों से संघर्ष हुआ। उससे असंख्य रश्मियाँ फूट कर परमेष्ठी मण्डल से बाहर नीचे की ओर जाती हुईं स्थूलतर होती गईं और जहाँ जहाँ रुकीं वहीं अनेक सूर्य मण्डल बनें। साथ ही में जो आत्मा नीचे की ओर प्रवाहित हुई वह अपने साथ पूर्वोक्त स्वयम्भू मण्डल का शब्द, व्योम, या आकाश या महावारुणी के और परमेष्ठी मण्डल की प्राणाग्नि वायु, जिसका गुण स्पर्श है, के साथ सूर्यमण्डल में अवतीर्ण हुई :—

१५—अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतर्जरायू रजसोविमाने।
इममपाᳬसङ्गमे सूर्य्यस्य शिशुन्न विप्रा मतिभीरिहन्ति उपायाम
गृहीतोऽसि मर्कायत्वा॥ (यजुः अ० ७ मं १६)

४—सूर्य मण्डल अथवा स्वःलोक।

यह सूर्यमण्डल गोलाकार काला (कोयले जैसे विद्युत पदार्थ का) है।

१६—आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥
(यजु० अ० ३४ मं० ३१)

जो कि परमेष्ठी मण्डल से नीचे १ अरब ८५ करोड़ ४ लाख ५२ हजार योजन पर आकर बना है।

(यजु० अ० २३ मं० ३, साम० रा० प्र० ३० मं० ११)

श्रीचार्ल्स ए० यङ्ग, न्यू जरसी, के हिसाब से यह सूर्य हमारी पृथ्वी मध्य से ६ करोड़ २६ लाख मील की दूरी पर है और यही पाश्चात्य ज्योतिष के इनैक्स टेबुल के हिसाब से ८ करोड़ २७ लाख है। इसमें जो प्रणाग्नि है उसे ऊपर के परमेष्ठी मण्डल से जो सोमधारा की आहुति बराबर मिलती रहती है उससे यह सूर्य मण्डल अत्यन्त विद्युत् प्रदीप्त व तेजस्वी रूप में बना रहता है :—

१७—पुनानः सोमधारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो दैवो हिरण्ययः।
(सा० पूर्व प्र० ६ मं० १)

१८—परितोषिञ्चता सुतं सोमो च उत्तमं हविः।
दधन्वान् यो नर्य्यो अप्स्वऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः॥
(सा० पूर्व प्र० ६ मं० २)

यह सूर्य मण्डल ५२ हजार मील मोटे अग्नि समुद्र का गोला है और यह सात तल वाला है जिसमें सात रंग की सप्त विद्युत अग्नियाँ हैं :—

१९—सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि।
(यजु० अ० १७ मं० ७९)

२०—सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
(ऋग्वेद मं० १ अ० २२ सू० १६४ मं० २)

२१—इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्त चक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभिसंनवन्ते यत्र भवां निहिता सप्तनाम ॥
(ऋग्वेद मं० १ अ० २२ सू० १६४ मं० ३)

इस सप्त विद्युत् अग्नियों से अर्थात् प्रत्येक से दो दो के हिसाब से १४ और तरल अग्नियाँ प्रकट हुईं जिन सबका जोड़ २१ हुआ । ऋग्वेद में जो २१ शाखाओं का पृष्ठ २ में वर्णन किया गया है वह इन्हीं २१ अग्नियों की मुख्य शाखाओं का वैज्ञानिक आलेख है। इस सूर्य मण्डल के चारों ओर चार विद्युत् केन्द्र हैं जिसके (१) पूर्व दिशा में वृद्धश्रवा इन्द्र (२) दक्षिण दिशा में बृहस्पति इन्द्र (३) पश्चिम दिशा में पूषा विश्ववेदा इन्द्र और (४) उत्तर दिशा में तार्क्ष्य अरिष्ट नेमी इन्द्र है ।

२२ -स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
(यजु० अ० २५ मं० १९)

इन चारों से घिरे स्थान का नाम वेदों में कल्याण वाची स्वस्तिक मण्डल है :—

२३—पथ्या स्वस्तिः पन्था अन्तरिक्षं तन्निवासात् ।
(यास्कीय निरुक्त अ० ११ ख० ४५)

उपर्युक्त सप्ताग्नियाँ, चार स्वस्तिक और विद्युत्, ये बारह सूर्य की कलायें अथवा १२ आदित्य कहलाते हैं और इसीसे वर्ष के १२ मास बनें। हर एक मास में क्रमशः इनमें से एक एक करके प्रत्येक का प्रधान

रूप से विद्युत् प्रवाह, हमारी पृथ्वी पर आता है। सूर्य ही देवलोक है (**देव लोको वा आदित्यः-कौषी० ब्रा० ५।७**)। सूर्य गर्भ से ही अनेक ग्रह तथा ऊपर से चन्द्र और नीचे से हमारी पृथ्वी पैदा हुई। इसीलिये वेदोक्त गायत्री (यजुः ३६ मं० ३) में सूर्य की अर्चना की गई है। पृथ्वी को वेदों ने सूर्य की पुत्री माना है :—

२४—हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० अ० २३ मं० १)

जब आत्मा प्राणाग्नि का (पूर्वोक्त आकाश व वायु तत्त्वों सहित) सूर्य मण्डल के विद्युत् पदार्थों से संघर्ष हुआ तो उससे लहरें उत्पन्न हुईं और उन्हीं लहरों के सहारे यह आत्मा पूर्वोक्त तत्त्वों सहित सूर्य के तेज अंश को साथ लिये, जिसका गुण रूप है, चन्द्र मण्डल में अवतीर्ण हुई।

५—चन्द्रमण्डल या अम्भस्—चन्द्र या भुवःलोक या पितृलोक।

उपर्युक्त बातों के अनुसार चन्द्रमा सूर्य से ही पैदा हुआ है। यह कोयले जैसे विद्युत् पदार्थ का गोलाकार बना है और शीतल सोमधारा के कारण, जो उस पर बराबर पड़ती रहती है, यह शीतल हो गया और शीतल रहता है :—

२५—चन्द्रमा अस्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
रवि पिशङ्ग बहुलं पुरुस्पृह ꣳ हरिरेति कनिक्रदत्॥
(यजु० अ० ३४ मं० ६०)

इसीलिये इसको शतपथ ब्रा० १०।४।२।१ में **"सोमो राजा चन्द्रमाः"** कहा है और इसी को कौषीतकी ब्रा० १६।५। में **"पितृलोकः—सोमः"** कहा

है। यही पितृलोक है और इसी को अन्तरिक्ष देवता भी कहते हैं। **"अन्तरिक्षदैवत्यो हि सोमः"**—(गो० ब्रा० उ० २।४)

चन्द्र सञ्चार जो हमारी पृथ्वी से घटता बढ़ता दिखलाई देता है उसका कारण उसकी गति है और गति का आश्रय वायु है। शतपथ ब्राह्मण में **"सप्त सप्त च मरुत् गणा"** १४ प्रकार के वायु का आलेख पाया जाता है। यह १४ प्रकार का वायु और १ इन्द्र विद्युत्शक्ति जो कि चन्द्र को घेरे हुए है, मिलकर १५ हुए और इन १५ से चन्द्र में गति होती है और यही १५ तिथियाँ हुईं जिनमें चन्द्रमा पूर्ण व अस्त होता दिखाई देता है।

चन्द्रमा की औसत दूरी हमारी पृथ्वीं से २३८८४० मील है और यह अपनी ही धुरी पर प्रत्येक चान्द्रमास में पूरा घूम जाता है। जो शीतल सोमधारा चन्द्र मण्डल पर पड़ती है उससे जो विद्युत् लहरें उत्पन्न होती हैं वे चार प्रकार की हैं जिन्हें क्रमशः (१) ससार्ण (२) ज्योति अथवा अमृत (३) गन्धर्व और (४) रस वा जल कहते हैं :—

९६—शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेणामृतममृतेन।
सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः॥
परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम्॥

(यजु० अ० ४ मं० २६)

ससार्ण, सर्प विष जैसा है, जो पृथ्वी के नीचे की ओर पड़ता है। रस, अमृत और गन्धर्व ये तीनों पृथ्वी पर सीधे पड़ते हैं। आत्मा जब चन्द्र-मण्डल में अवतीर्ण हुई थी तो अपने साथ पूर्वोक्त गुणों (आकाश, वायु, जल और तेज) से ओत-प्रोत थी। उसका जो संघर्ष पूर्वोक्त चार प्रकार की विद्युत् लहरों से हुआ उसके कारण उसके गुण रस अथवा अप् को लेती हुई पृथ्वी मण्डल पर अवतीर्ण हुई।

६— पृथ्वी मण्डल, भूः लोक या पृथ्वी।

संसार के सभी विज्ञ पुरुष इस बात पर एक मत हैं कि हमारी पृथ्वी सूर्य से बनी है और सूर्य ही इसका जीवनदाता है। इसीलिये वेदों में इस पृथ्वी को सूर्य की पुत्री कहा गया है (यजु० अ० ३१ मं० १) और यह पृथ्वी सूर्य से गिरकर नौ करोड़ पचास हजार मील पर आकर स्थित हुई। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि आज से लगभग २०० करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी का सूर्य से पैदा होना एक घटना थी। परन्तु हमारे वेद में इसका पूर्ण विवरण है (यजु० अ० ५ मं० १५ और १८ ; अ० १६ मं० १ ; ऋ० अ० २ सूक्त २७ मं० ८ ; ऋ० अष्टक २ सू० १६४ मं० ३ इत्यादि।)

पृथु नाम की विद्युत् शक्ति आकाश गंगा से चल कर आकाश में सर्वत्र फैली है और पृथ्वी को चहुँ ओर से घेरे हैं। इसी कारण इसका नाम पृथ्वी पड़ा। पृथु नाम की विद्युत् शक्ति को वेदों में कूर्म भी कहा है।
(यजु० अ० १ मं० ५२)

हमारी पृथ्वी का क्षेत्रफल सूर्य के क्षेत्रफल से १२०० गुना कम है। पृथ्वी का आकार अण्डाकार है तथा क्षेत्र फल १९६९४४००० वर्ग मील है और यह अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य की प्रदक्षिणा १८½ मील प्रति सेकेण्ड के हिसाब से बराबर कर रही है। आत्मा जब पूर्वोक्त अपने गुणों-आकाश, वायु, तेज और जल से सूक्ष्म रूप से ओत-प्रोत होती हुई पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई तब पृथ्वी का भी सूक्ष्म गुण गन्ध उसमें सूक्ष्म रूप से मिला तो आत्मा ने सूक्ष्म रूप (Astral Body) का निर्माण किया जिसका सूक्ष्म गुण तन्मात्रायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध हैं। पृथ्वी के स्थूल अंश को लेकर इन सब का स्थूल सम्मिश्रण न्यूनाधिक गुण के अनुसार चार भागों में विभाजित हुआ जिसको योनियाँ भी कहा है—

२७—स्वेदाण्डजोद्भिजो ये वै ये च जीवजरायुजाः।
(मत्स्य पुराण अ० १)

(१) उद्भिज	....	....	२० लाख तरह की योनियाँ
(२) स्वेदज	....	....	९ लाख „ „
(३) अण्डज	....	....	१२ लाख „ „
(४) जरायुज	....	....	३३ लाख „ „

हर तरह की योनियों का जोड़—८४ लाख (श्रीमद्भागवत) (मत्स्य पुराण) ; (शारदा तिलक) ।

आत्मा, (जिसे देही भी कहते हैं) उपर्युक्त अक्षर ब्रह्म से, जिसका वह स्वयं अंश है, उपर्युक्त पाँचों मण्डलों (चक्रों) से होती हुई, जब पृथ्वी मण्डल में अवतीर्ण हुई तो स्थूल व सूक्ष्म उपर्युक्त पञ्च तत्त्वों के गुण का न्यूनाधिक मिलन होने से, आर्य विकासवाद के सिद्धान्त पर, हर एक स्थावर, जंगम क्षेत्रज इत्यादि योनियों के रूप में प्रकट होती है। (ऐ० ब्रा० २-३-२ तथा गीता)

२८ आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
देहस्थोऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग् भवेत् ॥

(महानिर्वाण १४ । १६)

तथा

२९—एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥

(श्वेताश्व० उ० ६–११)

पर-आत्मा सदैव परे से परे साक्षी रूप निर्लिप्त रहती है ।

(महानिर्वाण तं० उ० १४ श्लो० ११६)

और पुरुष योनि में पूर्ण विस्तार (विकाश) में रहती है ।

(ऐ० ब्रा० २–३–२)

जगत् के सृजनहार पर-ब्रह्म की पराशक्ति ने (जो दो कहाते हुये भी एक और अभिन्न है) मनुष्य रूप को अपने तद् रूप प्रगट किया।

इसलिये यह मनुष्ययोनि इन ८४ लाख योनियों में से सर्वोत्तम व सर्वश्रेष्ठ है और केवल इसी मनुष्य योनि से ही अपने स्वरूप को साधना द्वारा पहचान कर ही, मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है (बभ्रीचोपनिषद्, श्रीमद्भागवत, शिवसंहिता, गरुडपुराण, तन्त्रमहानिर्वाण, रामायण इत्यादि)।

वेदों में वर्णित षट्मण्डल व अक्षर ब्रह्म	योग में वर्णित षट् चक्र व सहस्रार जो मनुष्य शरीर में हैं
अक्षर ब्रह्म–ज्योतिष्मान् बिंदु	सहस्रार–आज्ञा
।	।
स्वयम्भू मण्डल	विशुद्ध चक्र
।	।
परमेष्ठी मण्डल	अनाहत चक्र
।	।
सूर्य-मण्डल	मणिपूर चक्र
।	।
चन्द्र मण्डल	स्वाधिष्ठान चक्र
।	।
पृथ्वी मण्डल	मूलाधार चक्र
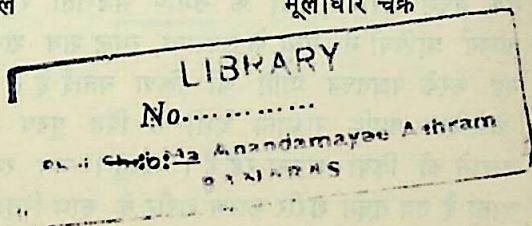
अध्याय २

जैसा पहले लिखा जा चुका है कि हमारे आर्य सद्ग्रन्थों ने बताया है कि मनुष्य का रूप जगत् के रचयिता ने सम्पूर्ण तद् रूप रचा।

सम्पूर्ण इसलिये कहा गया है कि केवल मनुष्य रूप में ही मुक्ति या मोक्ष प्राप्त हो सकता है। यही परम सत्य संसार के प्रत्येक मुख्य धर्म कहते चले आ रहे हैं पर मुक्ति का मार्ग स्पष्ट रूप से आर्य धर्म में ही बताया गया है कि अपने आपको पहिचानों कि तुम्हीं ईश्वर हो और यह परम सत्य केवल योग से ही गम्य है।

आर्य शास्त्र कहते चले आ रहे हैं और पाश्चात्य दार्शनिक भी इस बात को मानते हैं कि मनुष्य का तेहरा स्वरूप है (१) कारण (२) सूक्ष्म और (३) स्थूल (देवी भागवत ७–४७)। इन तीनों का अधिष्ठान है निजी आत्मा जो कि परब्रह्म परमात्मा का ही एक अंश है और प्रत्येक शरीर में साक्षी रूप से व्याप्त रहता है। जब यह अधिष्ठान शक्ति, जिसे आत्मा कहा है, इस स्थूल शरीर को छोड़ देती है तो इसे मृत्यु कहते हैं। (गी० अ० २ श्लो० २२)।

मृत्यु के उपरान्त जब तक कि स्थूल शरीर नष्ट नहीं हो जाता तब तक सूक्ष्म शरीर उसी के समीप मँडराता रहता है। इसी लिये आर्य्य ऋषियों ने मृत्यु के उपरान्त स्थूल शव शरीर को जलाकर शीघ्र नष्ट करके पञ्चतत्त्व प्राप्ति की क्रिया बताई है। कुछ समय से योरप, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के विज्ञ पुरुष स्थूल शव शरीर को जलाने की क्रिया अपना रहे हैं। अस्तु। जब स्थूल शव शरीर नष्ट हो जाता है तब सूक्ष्म शरीर कारण शरीर के साथ पितृलोक में जिसे चन्द्रलोक कहते हैं जाता है, (कौषीतकि ब्रा० १६।५—"पितृलोकः सोमः")।

मृत्यु के पूर्व स्थूल शरीर जैसा-जैसा कर्म करता है उसी कर्मानुसार सूक्ष्म शरीर चन्द्रलोक से सूर्यलोक में मुक्तिमार्ग पर अग्रसर होता है। अथवा पृथ्वी में पुनः आकर एक नया चोला ग्रहण करता है, जिसको जन्म कहते हैं। (गी० अ० १२ श्लो० २२)। (यामल) (महाभारत शा० प० २३) (इ० देवी० भा० ६–१८)

यह मरण-जीवन का चक्र, अनन्त आवागमन का चक्कर, तब तक चलता रहता है जब तक कि महाप्रलय न हो जाय अथवा जब तक मनुष्य अपने स्वरूप को साधन द्वारा पहचान कर मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण या नजात, न प्राप्त कर ले। (कठ उपनिषद् योगशिखोपनिषद्, भगवद्गीता, वेता० बृ० अ० उ० इ०)

आत्मनात्मानमाज्ञाय मुक्तो भवति मानवः। (महानिर्वाण तन्त्र उ० १४ श्लो० १२६)

जो साधक स्वशरीर में स्थित ईश्वर को छोड़कर केवल प्रतिमा में ही ईश्वर पूजन करता है उसकी पूजा का कुछ भी फल नहीं होता और न ईश्वर प्रसन्न होता है। (अष्टाङ्ग योगविधि—३ स्कन्ध–२८ व २९ अ०)

अध्याय [३]

आर्य ऋषियों द्वारा जीवन विज्ञान का प्रत्यक्ष अन्वेषण

विज्ञान जैसा कि पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता कहा करते हैं, उस विद्या का नाम है, जिसके द्वारा कोई विशेष विचारधारा समझाई व दिखलाई जा सके। पाश्चात्य वैज्ञानिक एवं दार्शनिक न्यूटन, हरखेल, विलसन, पाइ-लिटस्, फ्रानहाफर, उल्फ, सेवाइन, लैगले इत्यादि से हजारों वर्ष पूर्व बिना किसी आधुनिक यन्त्र जैसे स्पेक्ट्रास्कोप, एक्सरे इत्यादि की सहायता के, हमारे आर्य ऋषियों ने जीवन विज्ञान का अन्तर प्रत्यक्ष कर दिखलाया था। इन आर्य ऋषियों ने, अखिल विश्व और उसके रचयिता परा प्रकृति का सम्बन्ध जीवित अवस्था में मनुष्य देह और उसकी अधिष्ठातृ देवता आत्मा से क्या है, और कैसे साधना द्वारा अपने स्वरूप को पहचान कर मोक्ष अथवा उसके साथ एकत्व प्राप्त किया जा सकता है, स्पष्ट बतलाया है। महावाक्य ये हैं :—

अहं ब्रह्माऽस्मि—(वेद)। साऽहमस्मि—(ईशावास्योपनिषद्)
आत्मानं परम ब्रह्म—(योगिनीतन्त्र)
स वा अयमात्मा ब्रह्म (बृ० आ० उ०)
अहं देवो न चान्योस्मि—(तन्त्र इत्यादि)

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वाः॥
(यजु० ३१।१९)

तस्य च आत्मानमाविस्तरां वेदाश्नुते हविर्भूयः।
(ऐ० ब्रा० २–३–२)

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः (मैत्रेयी ब्रा० २–४–५)

प्राणो हि प्रजापतिः (शतपथ ब्रा० ४-५-५-१३)
प्राणो ब्रह्म (कौषीतकि ब्रा० २-१)
प्राण एव प्रज्ञात्मा (शांख्यायन आ० ५-३)
प्राणाग्नय एवास्मिन् ब्रह्मपुरे जाग्रति (प्रश्नोपनिषद्)
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। (मनुः)
अथर्ववेद प्राण सूक्त—
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योग—(देवीभागवत)

ये साधनायें जो कि आर्य ऋषियों के आविष्कार हैं और जिनके द्वारा परा प्रकृति का प्रथम त्रिकोण और उसी का असंख्य त्रिकोण, जिससे कि यह संसार तथा मनुष्य देह बनी है, जानकर, उससे, एकत्व का ज्ञान प्राप्त कर, साधक एक हो सकता है अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकता है। संसार में विभिन्न मनुष्यों के गुण, कर्म, सदाचार इत्यादि भिन्न भिन्न होने से, साधनाओं की भी प्रक्रिया, भिन्न भिन्न अवस्थाभेद होने से, उनके अनुकूल अनेक प्रकार की हैं। पर हर एक साधना द्वारा वही एक ही परम सत्य जानकर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। साधारणतया हमारे आर्य ऋषियों ने इन साधनाओं को चार विभागों में माना है।

मन्त्रयोगो लयश्चापि राजयोगस्तथैव च।
हठयोगोऽपि वै योगः चतुर्धा संप्रकीर्तितः॥
(याज्ञवल्क्य संहिता इत्यादि)

(१) मन्त्र योग—सह-भक्ति योग
(२) हठ योग
(३) कुण्डलिनी योग या लय योग या शिवशक्ति योग या महाराजाधिराज योग
(४) राज योग

(१) योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत्।

(योग बीज)

(२) विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते विधे (प्रिये) !

(योगशिखोपनिषद्) (योग वीज)

(३) अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मसाधनम्।

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

(४) आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात् तच्च योगादृते नहि।

(स्कन्दपुराण)

योग शब्द चारों वेदों में यथा स्थान मिलता है,

(ऋग० १–५–३ और १–३०–७ :, शुक्लयजुर्वेद १–१४)

सामवेद १–२–१०–३ और १–२–११–१ इत्यादि)

तथा उपनिषदों में श्वेताश्वतर, मैत्रायणी, योगतत्त्व, कठ, छान्दोग्य, ध्यानबिंदु, अमृतनाद, अमृतबिन्दु, क्षुरिक, योग, कुण्डल्य, योगशिखा, योगबीज, याज्ञवल्क्य इत्यादि २१ उपनिषदों तथा योगतन्त्रों में है। इसका शाब्दिक अर्थ है जोतना या जोड़ना। जिसके द्वारा निजी आत्मा से सांसारिक आत्मा को मिलाया या जोड़ा या अभेदात्मक संयोग किया जा सकता है। 'योगो जीवात्मनोरैक्यं' (महानिर्वाण तन्त्र उ० १४ श्लो० १२३)। योगशब्द को जर्मन भाषा में "जाश", लैटिन में "इंगून", अरबी में "सुलूक" कहते हैं। योग की प्रथम दीक्षा श्री हिरण्यगर्भ को शिवजी ने प्रदान की थी (महाभारत १२–२४२–६६; १२–३४६–६५; श्रीमद्भागवत ५।१६।१३, यजु० ४–७८)।

इस अति प्राचीनतम साधन का जो सबसे प्राचीन आलेख इस समय प्राप्त है वह सूत्र रूप में "पातञ्जल योग सूत्र" है; बौद्धमत में "पातञ्जलि तरीत्रा" नाम से इसका अनुवाद पाली भाषा में किया है। इसी का फारसी भाषा में अनुवाद प्राचीन काल में हुआ था, जिसे "किताब

पाताञ्जलि" नाम से श्री अलबेरूनी ने अपनी पुस्तक "इण्डिया" में लिखा है। वर्तमान में "पातञ्जल योग सूत्र" पर जो भाष्यादि उपलब्ध हैं, वे मुख्यतः निम्नांकित हैं—

(१) व्यास भाष्य (श्री वेदव्यास रचित)
(२) योग वार्तिक (श्री विज्ञान भिक्षु रचित)
(३) व्यासाभाष्य व्याख्या (श्रीवाचस्पति मिश्र रचित)
(४) राजमार्तण्ड (भोजराज प्रणीत)
(५) योगसूत्रवृत्ति (श्रीनागेशभट्ट कृत)
(६) सूत्रवृत्ति (श्रीगणेशभावा कृत)
(७) योगचन्द्रिका (श्रीआनन्द पण्डित कृत)
(८) गूढ़ार्थ दीपिका (श्रीनारायण पण्डित कृत)
(९) योगसूत्रवृत्ति व टिप्पण (श्रीमहादेव कृत)
(१०) मणिप्रभा (श्रीरामानन्द कृत)
(११) योगसूत्र भाष्य (श्रीरामानुज कृत)
(१२) पातञ्जलि रहस्य व प्रकाश (श्रीराघवानन्द कृत)
(१३) योग सूत्रवृत्ति (श्रीउमापति मिश्र)

उपरोक्त से इतर योग दर्शन के कई अन्य ग्रन्थ भी हैं :—

(१) योग प्रभा—श्लोक संख्या		३२	हजार—	जनक प्रणीत
(२) योग प्रदीप—	,, ,,	१५	,,	अंगिरा ,,
(३) योग रत्नाकर—	,, ,,	६०	,,	— कश्यप ,,
(४) योग विलास	,, ,,	१५	,,	— कैत्स ,,
(५) योग सिद्धान्त	,, ,,	१८	,,	— मरीचि ,,
(६) प्रदर्शन—योग	,, ,,	७	,,	— सञ्जय ,,
(७) योग—निदर्शन	,, ,,	१८	,,	— कौशिक ,,

(८) योग-मार्तण्ड श्लोक संख्या १२ हजार -- सूर्य्य प्राणीत
(९) योग विलास ,, ,, २४ ,, -- मरीचि ,,
(१०) सिद्ध सिद्धान्त पद्धति-गोरक्षनाथ रचित

श्री चक्रपाणिदत्त ने, जो कि भोजराज के एक सभासद थे, अपनी पुस्तक में व भर्तृहरि ने वाक्य पदीय के दूसरे काण्ड में लिखा है कि चरक और पतञ्जलि ये दोनों एक ही व्यक्ति थे। यथा :—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

इस पर अनेक मतमतान्तर हैं। इस योग सूत्र पर महर्षि व्यास ने जो सर्वोत्तम टीका की है वह उपलब्ध है। यह प्रकट है कि बुद्ध अवतार या पैगम्बर मोहम्मद साहब से बहुत पहले, ईसा के पूर्व, द्वितीय शताब्दि में यह योग सूत्र महर्षि पतञ्जलि ने लिखा था। अमेरिका के हारवार्ड विश्वविद्यालय के आचार्य श्री जेमस हागटन उड्स ने इस योग सूत्र का लेखन काल ईसा की पाँचवीं शताब्दी में बताया है, जो कि उपर्युक्त प्रमाण से असत्य सिद्ध है। अधिक विस्तार से इस छोटी पुस्तका में स्थान कहाँ।

पाश्चात्य विचारकों की एक प्रथा सी रही है कि वे लोग प्रायः आर्य सद्ग्रन्थों का काल ईसा के बाद की ही शताब्दियों में लिखते आ रहे हैं। उदाहरण भी देखिए। श्री हरमान स्नाइडर ने अपने ग्रन्थ "संसार की सभ्यता का इतिहास" में जिसके कि अंग्रेजी अनुवादक श्री मरजोरी ग्रीन ने जिल्द २ पृष्ठ ७०६ में लिखा है कि "महर्षि सुकरात की तरह बुद्ध हुए और उन्होंने ही अनेक देवताओं की जगह एक देवता को बदला।" यह स्पष्ट है कि भगवान बुद्ध ने एक देवतावाद का जो प्रचार (काशी) वाराणसी से प्रारम्भ किया था, वह कोई नई बात न थी। हमारे वेदादि सद्शास्त्रों में यह अनादि काल से चले आ रहे हैं। वास्तव में अनेक देवतावाद क्या है ?

और वह परब्रह्म से क्या भिन्न है ? इसको पाश्चात्य विचारक अभी तक समझ ही नहीं पाये हैं। इन्हीं सब के साथ योग क्रिया सीखने के लिये भगवान ईसामसीह बनारस आये थे (देखिये तिब्बत का ईसामसीह का इतिहास) उद्धरण श्री दामोदर सातवलेकर (सी० पी०)द्वारा लिखित "वैदिक सम्पत्ति।"

किस योग की किस तरह की साधना मनुष्य विशेष को उपयोगी होगी, इस विषय में गम्भीर ज्ञान की आवश्यकता है और यह विषय केवल सिद्ध योगी गुरु ही बता सकते हैं।

हमारे आर्य ऋषियों ने हमारी पृथ्वी की आयु के चार (युग) विभाग बताये हैं :—

(१) सत्ययुग--१७२८००० वर्ष का
(२) त्रेतायुग--१२९६००० वर्ष का
(३) द्वापरयुग—८६४००० वर्ष का
(४) कलियुग--४३२००० वर्ष का

हर एक युग के लिये अलग-अलग प्रकार के योग की साधनायें बताई हैं। इस काल में चतुर्थयुग कलि का साम्राज्य है जिसके कि ५०५४ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस काल के मनुष्यों के गुण, कर्म और आचार के अनुसार हमारे ऋषियों ने बिना किसी जाति, रङ्ग या लिङ्ग के भेद भाव के सर्व उपयोगी जो साधना कही है उसको कुण्डलिनी योग या लय योग कहते हैं।

कुण्डलिनी योग का सूक्ष्म तत्त्व लिखने के पूर्व योग-चतुष्टय का परिचय सार दे देना उचित ही है। सब योगों में परस्पर सापेक्षता है और जो यह बात नहीं समझता यह योगी नहीं है। (बोधसार तन्त्र)।

१—मन्त्रयोग सभक्ति योग –

नाम रूप के अवलम्बन से, भक्ति व मन्त्रसाधन द्वारा सृष्टि के बन्धनों से छूटकर साधक मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अपने इष्ट के नाम के मन्त्र का

जप करते-करते उसके रूप में ध्यानमग्न हो अपने आपको भूल जाकर जं समाधि होती है उसको "महाभाव" कहते हैं। इस प्रथमयोग के मुख्य आचार्य हैं :-(१) महर्षि नारद (२) पुलस्त्य (३) गर्ग (४) बाल्मीकि (५) भृगु (६) बृहस्पति इत्यादि। इस योग की क्रियायें कुण्डलिनी योग में पाई जाती हैं।

२—हठ योग—

स्थूल शरीर के अवलम्बन से, हठ साधक, कठोर योग क्रियाओं का साधन करता हुआ, मुख्यतः प्राणायाम व वायु निरोध द्वारा, सूक्ष्म शरीर पर आधिपत्य कर, ज्योतिर्मय रूप में समाधि लाभ करता है। इसको "महा-बोध" कहते हैं। इस योग के मुख्य आचार्य हैं :—महर्षि (१) मार्कण्डेय (२) भारद्वाज (३) मरीचि (४) जैमिनि (५) पराशर (६) विश्वा-मित्र (७) मन्थान (८) भैरव (९) कंथडि (१०) सिद्धिपाद (११) गोरखनाथ इत्यादि। हठयोगसंहिता के मत से, इन महर्षि आचार्यों की कृपा से हठयोग का प्रचार हुआ। इस योग की भी उत्तम क्रियायें कुण्डलिनी योग में पाई जाती हैं।

३—राजयोग—

मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार ये चारों अन्तःकरण के भेद हैं। अन्तः-करण ही सृष्टि, स्थिति और लय का कारण है। विचार बुद्धि की पूर्णता द्वारा वृत्ति जय (अन्तःकरण जय) से स्वरूप का प्रकाश ही राजयोग है। यह योग चारपाद और १६ अंगों में विभक्त है। इसके समाधि के चार अङ्ग हैं, २ सविचार और २ निर्विचार। इस योग की उत्तम क्रियायें कुण्डलिनीयोग में पाई जाती हैं।

४—कुण्डलिनी योग, या लय योग या शिवशक्ति योग या महाराजाधिराज योग—

अङ्गिरा याज्ञवल्क्यश्च कपिलश्च पतञ्जलिः।
वशिष्ठकश्यपौ वेदव्यासाद्याः परमर्षयः॥ (लय योग संहिता २)

इन पूज्यपाद महर्षियों की कृपा से वाणी और मन से अतीत, ब्रह्मपद-प्राप्तिकारण, इस कुण्डलिनी योग वा लय योग वा शिवशक्ति योग का सिद्धान्त हितप्रद हुआ। स्वपिण्ड द्वारा ब्रह्माण्ड ज्ञान लाभ कर, परा प्रकृति, मूलाधार में प्रसुप्त कुण्डलिनी, जो कि पराशक्ति ब्रह्म से उत्पन्न हो कर, मनुष्य शरीर में प्राण को धारण करने वाली है, इसको जाग्रत कर, परा पुरुष के पास सहस्रार में सुषुम्ना मार्ग से षट् चक्रों द्वारा ले जाकर, लय करने को लय योग--कुण्डलिनी योग शिवशक्ति योग—महा योग कहते हैं। इस योग में स्थूल व सूक्ष्म क्रियाओं द्वारा कुण्डलिनी उत्थान, षट्चक्र भेद, व्योम पञ्चक जय, विन्दु, ध्यान सिद्धि, महालय समाधि, सिद्धि व आत्मसाक्षात्कार होता है। लययोग संहिता में लय योग के ६ अङ्ग कहे हैं—(१) यम (२) नियम (३) स्थूल क्रिया (आसनादि), (४) सूक्ष्म क्रिया (प्राणायाम आदि), (५) प्रत्याहार (नादानुसन्धान), (६) धारणा (षट्चक्र वेध) (७) ध्यान (८) लय क्रिया (९) समाधि।

पर, योग तत्त्वज्ञ महर्षियों ने इस लय योग के आठ अङ्ग ही माने हैं अर्थात् उपर्युक्त (८) लय क्रिया और (९) समाधि को एक ही में, अर्थात् आठवाँ अङ्ग कहा है और इससे साधना में कोई भी अन्तर नहीं ही होता। मन्त्र, सभक्ति योग, हठ योग, राज योग की उत्तम क्रियायें इस योग में पाई जाती हैं। सूत्र रूप से इस लय योग या कुण्डलिनी योग का आख्यान वेदों तथा तन्त्रों में पाया जाता है। यथा—कृष्ण यजुर्वेद के अरुणोपनिषद्, ऋग्वेद के भावरीचोपनिषद्, अर्थववेद तथा उसके उपनिषद्, योगोपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, कठोपनिषद्, योग कुण्डलिन्युपनिषद्, सूक्त, पुराण, संहिता जैसे—हठ योग संहिता, हठ योग प्रदीपिका,

लययोग संहिता, लययोग प्रदीपिका, राजयोग संहिता, ऋक् संहि
शिव संहिता, घेरण्ड संहिता, गोरक्ष पद्धति, योग वाशिष्ट, श्रीमद्भागवत-
स्कन्ध, देवी भागवत, भगवद्गीता (ज्ञानेश्वरी अनुवाद), ब्रह्म सू
ब्रह्मदर्शन न्यायदर्शन व्याख्या इत्यादि, तथा सन्त वाणियों में कबी
दादू, बुल्लेशाह आदि, तथा तन्त्रों में—रुद्रयामल, योग कर्णिका, तन्त्रान्त
तन्त्रसार, षट् चक्र निरूपण आदि।

तन्त्र का अर्थ है जिसके द्वारा मुक्ति प्राप्त हो। तन्त्र में वेदों ही
व्याख्या है इसीलिये तन्त्र को पञ्चम वेद कहते हैं। जर्मनी के विख्या
आचार्य ग्रूनवेडल अन्वेषित पुस्तक "डर वेग नाछ संभालर" में भी उपयु
बात लिखी है। यह विषय ज्ञातव्य है कि तन्त्र अनेक हैं और इसके
मुख्य भाग हैं (रुद्रयामल) (१) उद्ध्वाम्नाय (जिन साधनाओं द्वा
मनुष्य ऊपर उठ कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है) (२) अधोम्ना
(जिन साधनाओं द्वारा मनुष्य नीचे गिरकर संसार बन्धन में पड़ा रह
है)। इस कुण्डलिनी योग का आख्यान उद्ध्वाम्नाय तन्त्रों में त
बौद्धतन्त्रों में है, यथा—महाबोधि गुह्य समाज तन्त्र इत्यादि, जैन त
यथा—योग विंशिका-योग भेद द्वाविंशिका, इत्यादि।

जैसा कि हमारे सद्शास्त्र बतलाते हैं कि यह ब्रह्माण्ड पराशि
(Universal spirit–Microcosmic) और पराशक्ति (Univer-
sal spirit force–Microcosmic) के संयोग से, जो कि दोनों ए
ही हैं और अभिन्न हैं, उत्पन्न हुआ। आत्मा वा देह, मनुष्य योनि
उसी के अंश से, पाँचों चक्रों से होता हुआ, गुणानुसार, आर्य विकासवा
के आधार से, उपर्युक्त ८४ लाख योनियों से होता हुआ मनुष्य योनि
में उत्पन्न हुआ। यह आर्यविकास वाद, अवतार वाद से और स्पष्ट है। इ
आर्य विकास वाद (अवतार वाद से दृश्य) को पाश्चात्य दार्शनिक डारवि
जोजेफमैक, रोड, स्टीटवर्ग, हैमिल्टन आदि ने बहुत अंशों तक माना है।

उपर्युक्त आत्मा जो परब्रह्म का ही अंश है, आर्य विकासवाद द्वारा पिण्ड में (मनुष्य देह में) अवतीर्ण होता है। समष्टि और व्यष्टि सम्बन्ध से ब्रह्माण्ड और पिण्ड एकत्व सम्बन्ध से युक्त हैं। ऋषि, देवता, पितर, ग्रह, नक्षत्र, प्रकृति, पुरुष सबका स्थान ब्रह्माण्ड और पिण्ड में समान रूप से है। अतः साधना द्वारा पिण्ड ज्ञान से ब्रह्माण्डज्ञान व स्वज्ञान (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

"अहं देवो न चान्योस्मि" (रुद्रयामल, महानिर्वाण तन्त्र २०, १४ श्लो० १३६; ज्ञान सङ्कलिनी तन्त्र, शाक्तानन्द तरङ्गिणी पृ० १, लययोग संहिता ल० अ० २–१ से ३, ईशावास्योपनिषद् श्लोक १३, श्रीमद्भागवत ११–१२–२४, गरुडपुराण अ० २० श्लो० १८ से २० इत्यादि)। जब तक स्वशरीर ज्ञान नहीं होता तब तक योग सिद्ध नहीं होता।

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योम पञ्चकम्।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः॥ (गोरक्षसंहिता)

"त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च॥
स्थितिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः"॥ (शिवसंहिता)

ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे। इत्यादि॥ (यामल)

"देहस्थाः सर्वविद्याश्च देहस्थाः सर्वदेवताः।
देहस्थसर्वतीर्थानि गुरुवाक्येन लभ्यते॥"

(ज्ञानसङ्कलिनीतन्त्र)

"देहो देवालयः प्रोक्तो" "जीवो देवः सदाशिवः।"

(शिवज्ञानदीपिका तथा भावनोपनिषद्)

"नादचक्रे स्थितः सूर्यो विन्दुचक्रे तु चन्द्रमा।
लोचने मण्डलः प्रोक्तो, हृदि सोमसुतस्तथा" इत्यादि ॥
(गरुड़पुराण तथा शाक्तानन्द तरङ्गिणी
"ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति ।" (श्रीभगवद्गीता)
"आत्मनात्मानमाज्ञाय मुक्तो भवति मानवः ॥" (महानिर्वाण)
"ब्रह्मणो रूपं देहे व्यवस्थितम्" ॥ (योगिनीतन्त्र)

मनुष्य अविद्या द्वारा बन्धनों में बँधकर भटकता रहता है। यह बन्ध ही सांसारिक दुःखों का कारण है। मोक्ष अथवा स्वज्ञान, कुण्डलिनी यो की साधनाओं द्वारा निश्चयरूपेण प्राप्त होता है। महर्षि योगी याज्ञवल्क्य मट्टुंगा, दक्षिणामूर्ति आदि ने तथा श्रीभगवद्गीता, आदित्यपुराण, स्कन्द पुराण, कूर्मपुराण, गरुडपुराण, ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वायुपुरा नारदपुराण, लिङ्गपुराण, उपनिषदों, तन्त्रों आदि ने योग को सर्व ज्ञा कर्म, तप से अधिक श्रेष्ठ माना है।

योग की साधनाओं में पूर्णरूपेण शारीरिक तथा मानसिक शुद्धि परम आवश्यकता है और साथ ही स्ववीर्य पर पूर्ण नियन्त्रण हो (प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् आदि)। मनुष्यों में जो प्राणिमात्र भला चाहने वाला हो, परस्त्री को मातृवत् समझने वाला हो, आलसी हो, अपने ऊपर नियन्त्रण रख सकता हो, वही योग दीक्षा का अधिकारी हो सकता है (मेरुतन्त्र)। काम, क्रोध, मद, लोभ, प्रमोह, मत्सर, अतिभोजन व्रत, उपवास, अतिनिद्रा, अतिजागरण-ये सब योग मार्ग के विघ्न कहे जा हैं (लिङ्ग महापुराण अ० ९)।

यह बात ध्रुव सत्य है कि योग की साधना पुस्तकी विद्या से अथवा किसी से सुनकर कदापि न करनी चाहिये। (षट्चक्र निरूपण) क्योंकि मनुष्य देह के भीतरी आवश्यक अङ्गों से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और यदि साधनायें ठीक न हुईं तो घोर अनिष्ट हो जाता है, ऐसा देखा गया है। जैसे कुष्ठ, राजयक्ष्मा, महामारी, अतिसार, उन्माद इत्यादि।

अतएव यौगिक साधनायें आरम्भ करने के पूर्व, किसी सिद्ध एवं सद्‌गुरु योगी से, स्थान, काल आदि का निर्णय कराकर, दीक्षा प्राप्त करे और मनुष्य देह परिचय (Anatomy cum Physiological–Psycho–logy), नाड़ी विज्ञान (Neusology) तथा परामनोविज्ञान (ParaPsychology) को भलीभाँति समझ बूझकर, योग की प्रथम स्थूल क्रियाओं को खूब सावधानी से प्रथमतः उनके ही सान्निध्य में क्रमशः साधना आरम्भ करे। क्योंकि शिष्य पर कृपाकर, सिद्ध सद्‌गुरु योगी ही शिष्य को, शक्तिपात कर उसमें दिव्य चक्षु का उन्मीलन कर सकते हैं। योग से बिगड़े रोगी की चिकित्सा, वैद्य अथवा डाक्टर द्वारा कदापि ठीक नहीं होती। ऐसे रोगी को केवल सिद्ध सद्‌गुरु योगी ही ठीक कर सकते हैं।

———

अध्याय [४]

योग में शरीर परिचय

कुण्डलिनी योग की व्याख्या करने से प्रथम शरीर परिचय होना आवश्यक है। क्योंकि इस योग की साधनाओं से, यौगिक विज्ञान में वर्णित स्वशरीर के भीतर पूर्ण विजय प्राप्त होता है।

योगिक क्रियाओं में स्व-शरीर के जीवित अवस्था की नाडी, चक्र, शक्ति आदि का स्वरूप सूक्ष्मतर होता है। इसलिये उनका पूर्णरूपेण पाश्चात्य शरीरविज्ञान (Anatomy Cum Physiologycal Psychology) से मिलान करना युक्तिसङ्गत पूर्णतः प्रतीत नहीं होता।

मानव शरीर मुख्यतः (१) पञ्च भूत (२) पञ्च प्राण वायु (३) हड्डियाँ और (४) नाड़ियों का बना हुआ है। यथा :—

(१) पञ्चभूत या पञ्चतत्व

(१) आकाश (२) वायु (३) तेज (अग्नि) (४) अप (जल) (५) पृथ्वी। इनकी व्याख्या पिछले पृष्ठों के अध्याय १ में देखिये।

(१) यह सारा विश्व अन्तरिक्ष से व्याप्त है। (ताण्ड्य ब्रा० १५। १२।२) आकाश ही अन्तरिक्ष है। यह जो बाहर आकाश है वही तुझमें और मुझमें हैं (जैमि० ब्रा० उ० १।२०।२)

(२) वायु का नाम ही जातवेदा है। जो कुछ जगत् में क्रियामय दीख रहा है वह सब वायु कर रहा है (ऐ० ब्रा० २–३४; शत० ब्रा० ८।१।१।७)। वायु ही प्राण है (ऐ० ब्रा० २।२६।३।२)। एक ही वायु पुरुषों में प्राण, उदान, व्यान इत्यादि रूप का होता है।

(३) तेज का नाम अग्नि है (शत० ब्रा० २। ५। ४। ८)। अग्नि ही जठर है (तै० ब्रा० २।७।१२।३)। अग्नि ही मैथुन तथा प्रजनन का स्वामी है (शत० ब्रा० ३।४।३।४)।

(४) अप, जल अथवा सोम, चन्द्रमा का गुण है। चन्द्रमा ही सोम अथवा जल है (कै० ब्रा० १६।५; तै० १४।१०।७) द्रवत्वं अम्भसि।

(५) पृथ्वी—पृथ्वी वै मित्रवरुणयोः प्रियं धाम (ताण्ड्य ब्रा० १४। २।४)। धृतिकाठिन्यादिगुणयुक्तंक्षितिः।

(२) पञ्च प्राण

(१) प्राण (२) अपान (३ समान (४) उदान (५) व्यान (६) नाग (७) कूर्म (८) कृकल (९) देवदत्त (१०) धनञ्जय—

ये दस प्राण समूचे शरीर में व्याप्त होकर उसका सञ्चालन करते हैं। (ऐ० ब्रा० २-२६-३-२; तै० ब्रा० ३-२०-४८; गोरक्षपद्धति श० १-३३; भावनोपनिषद्-१७)

इन दस प्राणों में से निम्नलिखित पाँच, योग में मुख्य हैं अतः इनको पञ्चप्राण कहते हैं—

(१) प्राण— हृदय में बस कर गले के नीचे से हृदय के नीचे तक की क्रियाओं का सञ्चालन करता है।

(२) अपान प्राण—नाभि से नीचे गुदा के पास रह कर उसका सञ्चालन करता है और प्रधानतः मलमूत्रादि बाहर निकालता है। (सुश्रुत ४, ५, २८,)

(३) समान प्राण —हृदय के नीचे से नाभि तक रहकर उसका सञ्चालन करता है और शरीर को पुष्ट रखता है।

(४) उदान प्राण—कण्ठ से ऊपर तक रह कर उसका सञ्चालन करता है।

(५) व्यान प्राण—सर्वशरीर में व्याप्त रह कर उनका निरीक्षण करता है।

> प्राणोपानःसमानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
> हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले॥
> उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः। (अमरकोष)

बाकी नागादि पाँच का कर्म चर्म और हड्डियों में है। मुख्यतः ये पञ्चप्राण मानव शरीर में रह कर उसका सञ्चालन, ६ चक्रों की आज्ञा में रहकर करते हैं (शत प० ब्रा०)। इन ६ चक्रों का तथा उनकी मुख्य अधिष्ठातृ शक्ति कुण्डलिनी का वर्णन आगे यथा स्थान दिया गया है।

३—हड्डियाँ

मानव शरीर के कंकाल में पाँच भाग की सुश्रुत मतानुसार ३०० हड्डियाँ और चरक मतानुसार ३०६ हड्डियाँ हैं। इन हड्डियों में खोपड़ी और मेरुदण्ड या पीठ के रीढ़ की २६ टुकड़ों वाली हड्डी मुख्य है। मेरुदण्ड या रीढ़ की २६ हड्डियों का बीच का अंश कुछ खोखला है जो कि नाड़ी द्वारा बँधा रहता है। जिसे सुषुम्णा कहते हैं। इस सुषुम्णा नाड़ी का वर्णन आगे यथा-स्थान दिया गया है।

४—नाड़ियाँ

सुश्रुत तथा कणाद-कृत नाड़ी विज्ञानानुसार मानव शरीर की समस्त नाड़ियाँ सम्बद्ध होकर शरीर में फैली हुई हैं। जीवरस (Protoplsm) के आश्रित नाड़ियाँ मानसिक तथा कर्म शक्ति का वहन करती हैं (वाराहोपनिषद्)। जैसे प्राण शरीर की रक्षा करता है उसी तरह हरे, नीले, लाल और श्वेत रंग की नाड़ियाँ, रुधिर से पूर्ण हो, प्रक्षेप-विक्षेप से विकसित एवं संकुचित होकर, शरीर की रक्षा करती हैं (अथर्ववेदीय क्षुरिकोपनिषद् तथा सुबालोपनिषद्) । (Text book of Neuro Anatomy by Lea and Febiger)

ये नाड़ियाँ जाल की तरह ऊपर नीचे तिरछी होकर मनुष्य के सर्वाङ्ग में व्याप्त हैं (अथर्ववेद १८।४।२३)। इनकी संख्या ७२ हजार है (गोरक्ष पद्धति श्लो० २५)। इन ७२ हजार में से ७२ नाड़ियाँ मुख्य हैं और इनमें से प्राण तरंग (Impulse) वहन करने वाली केवल दस हैं (गोरक्ष-पद्धति श्लोक २७–२८; भावनोपनिषद्–१६)।

योगाभ्यासी को इन दस नाड़ियों व उनमें चलने वाले प्राण के संवेग आवेग तरंगों को सदा जानना चाहिए। इन दस नाड़ियों के नाम हैं

(१) इड़ा (२) पिङ्गला (३) सुषुम्णा (४) गान्धारी (५) हस्तिजिह्वा (६) पूषा (७) यशस्विनी (८) अलंबुषा (६) कुहू (१०) शंखिनी । इन दस नाड़ियों का मानव शरीर में स्थान लिङ्ग महापुराण तथा गोरक्ष-पद्धति (श्लो० २६–३१) के अनुसार इस प्रकार है ।

१—इड़ा नाड़ी

१—इड़ा नाड़ी (Left gangliated chord)—यह मेरुदण्ड के बाहर, अन्त में नीचे बायें तरफ (मूलाधार चक्र के त्रिकोण के बायें तरफ) से प्रारम्भ होकर बायीं नाक में समाप्त हो जाती है तथा इसका प्रवाह ऊपर को है ।

२—पिङ्गला नाड़ी

२—पिङ्गला नाड़ी (Right gangliated chord)—यह मेरु-दण्ड के बाहर नीचे दाहिने तरफ (मूलाधार चक्र के त्रिकोण के दाहिने तरफ) से प्रारम्भ होकर दाहिनी नाक में समाप्त हो जाती है तथा इसका प्रवाह ऊपर को है ।

३—सुषुम्णा नाड़ी

३—सुषुम्णा (Spinal chord)—यह मेरुदण्ड को पिरोये उसके मध्य (मूलाधारचक्र के त्रिकोण के मध्य पश्चिम) से प्रारम्भ होकर ब्रह्म-रन्ध्र (मस्तिष्क के अन्दर) पर्यन्त मृणालतन्तु के समान सूक्ष्म और ज्वाला-सी उज्ज्वल प्रकाशमान परा नाड़ी है और इसी के अन्दर षट्चक्र हैं जिसके द्वारा अखण्ड ब्रह्मानन्द पद मिलता है। ये तीन नाड़ियाँ (१) इड़ा (२) पिङ्गला और (३) सुषुम्णा मूलाधार में जो अण्डक त्रिकोण है, उसी में से प्रारम्भ होती हैं और इन्हीं में से प्राण की तरंगों का मार्ग है। इसीलिये योगियों के लिये परमावश्यक तथा ज्ञातव्य हैं ।

इसी सुषुम्णा नाड़ी को अलग अलग योग ग्रन्थों में शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्री, महापथी, शाम्भवी, श्मशानी इत्यादि नाम से कहा है (हठयोग प्रदीपिका उ० ३ श्लोक ४) और यही मुख्य है ।

सुषुम्णैव परं तीर्थं सुषुम्णैव परो जपः।
सुषुम्णैव परं ध्यानं सुषुम्णैव परा गतिः॥ (योगशिखोपनिषद्)।

सुषुम्णा ही परम तीर्थ है, सुषुम्णा ही परा जप है, सुषुम्णा ही परम ध्यान है और सुषुम्णा ही से परागति होती है। इसी सुषुम्णा नाड़ी के अन्दर वज्रा नाड़ी, उसके अन्दर चित्रा नाड़ी और उसके अन्दर ब्रह्म नाड़ी है। वज्रा, चित्रा तथा ब्रह्म नाड़ियाँ मृत्यु होने पर अदृश्य हो जाती हैं। पाश्चात्य शरीर विज्ञान (Anatomy cum physiology Neurology) में इन तीनों का परिचय है।

४—गान्धारी नाड़ी

४—गान्धारी (Left ocular motor nerve) यह बायें नेत्र में है।

५—हस्तिजिह्वा नाड़ी

५—हस्तिजिह्वा (Right ocular motor nerve) यह दाहिने नेत्र में हैं।

६—पूषा नाड़ी

६—पूषा (Right acoustic nerve) यह दाहिने कान में है।

७—यशस्विनी नाड़ी

७—यशस्विनी (Left acoustic nerve) यह बायें कान में है।

८—अलंबुषा नाड़ी

८—अलंबुषा (Pharyngeal nerve) यह मुख में है।

९—कुहू नाड़ी

९—कुहू (Pubic nerve) यह लिङ्ग में है।

१०—शंखिनी नाड़ी

१०—शंखिनी (Is in the perienum) यह गुदा में है।

--:०:--

अध्याय ५

षट्चक्र तथा सहस्रार

इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ अपने मूल स्रोत से प्रारम्भ होती हुई अपने स्थान को पहुँचने से पहले मेरुदण्ड के बाहर पाँच स्थानों पर मिलती हुई जाती हैं। जिस जिस स्थान पर यह मिलन होता है ठीक उसी स्थान पर मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्णा नाड़ी के अन्दर ५ चक्र तथा इसी सुषुम्णा के अन्दर भ्रूमध्य के पिछले स्थान में ६ ठा आज्ञा चक्र है। इन ६ चक्रों के नाम निम्नांकित हैं :—

(१) मूलाधार (२) स्वाधिष्ठान (३) मणिपूर (४) अनाहत (५) विशुद्ध (६) आज्ञा।

इन ६ चक्रों के बाद मेरुदण्ड के ऊपरी सिरे पर जहाँ सुषुम्णा का अन्त है (कपाल के अन्दर), उस स्थान के ऊपर अंत में १ सहस्रदल वाला चक्र है उसको सहस्रार कहते हैं। इसी सहस्रार में उपर की ओर प्रथम गुहा में पराशिव का स्थान है। हर एक षट्चक्रों द्वारा नाड़ियों का—अन्तः प्रेरणा तरंगों का संचालन होता है और इन षट्चक्रों की अधिष्ठातृ शक्तिकुण्डलिनी है (रुद्रयामल उत्तरखण्ड २१ पटल, षट्चक्र निरूपण, गरुड़पुराण आदि)।

(१) मूलाधार चक्र (Pelvic Plexus-Coceygeal)—ऊपर बताया जा चुका है कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ियाँ मुख्य प्राण-वाहिका हैं और इनका मूलस्रोत मूलाधार चक्र में है और इसीको युक्त त्रिवेणी कहते हैं। यह चक्र मेरुदण्ड के भीतर उसके सबसे निचले अन्त भाग में गुदा के और लिङ्ग की जड़ के कुछ नीचे के मध्य में सुषुम्णा नाड़ी में है। इस चक्र का स्वरूप अंडाकार चारदल वाला त्रिकोण है। जिसका तत्त्व पृथ्वी और रंग पीतवर्ण है। इस चक्र का बीज "लं", देवता "गणेश" हैं, शक्ति "डाकिनी" है और अधिष्ठातृ देव "ब्रह्मा" है। इस त्रिकोण के मध्य में

मेरुदण्ड के निचले भाग के अन्त में एक लिङ्ग, बन्द कली के समान है और उसमें सूक्ष्म छिद्र है जिसे सुषुम्णा नाड़ी का मुख कहते हैं तथा इस बन्द कली के समान लिङ्ग को "स्वयंभू" लिङ्ग कहते हैं (Conus Medullaris)। इस स्वयम्भू लिङ्ग के चहुँओर साढ़े तीन चक्कर में कसकर लिपटी हुई, अत्यन्त महान् तेजस्वी, स्वर्ण प्रदीप्त ज्योतिर्मय स्वरूप, सर्प के सदृश अपनी पूँछ को मुख में लिये, सुषुम्णा नाड़ी के छिद्र को रोके हुई जो जीव शक्ति विराजमान है उसे "सुप्त कुण्डलिनी" कहते हैं। (Dormant Cosmic Energy)

१ यत्कुमारी मन्द्रयते यथो विद्य पतिव्रता अरिष्टं यत्किञ्चक्रियते अग्निस्तदनु वेधति। कुण्डलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते।

यद्यस्मिन् चक्रे कुमारी कुमारावस्थामापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रं स्वरं करोति।

पुरं हिरण्यमयीं ब्रह्मा विवेशो पराजिता। (यजुर्वेद)

२ कुण्डले अस्या स्तः इति कुण्डलिनी॥
मूलाधारस्य वह्नयात्मतेजोमध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणकाराय तैजसी॥
महाकुण्डलिनी प्रोक्ता परब्रह्मस्वरूपिणी।
शब्दब्रह्ममयी देवी एकानेकाक्षराकृतिः॥
शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा।
(योगकुण्डल्युपनिषद्)

३ ॐ नमस्ते परमं ब्रह्म कुण्डलिनि स्वरूपिणे॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमोनमः। (महानिर्वाण)

४ अथ कुण्डलिनीं ध्यात्वा स्तोत्रं शृणु तत् कथयामि तेः—
नमस्ते देवदेवेशि ! योगीशप्राणवल्लभे !।
सिद्धिदे वरदे मातः स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिते॥

प्रसुप्तभुजगाकारे सर्वदा कारणप्रिये ।
कामकलाहिते देवि ममाभीष्टं कुरुष्व च ॥
असारे घोरसंसारे भवरोगान् महेश्वरि ।
सर्वदा रक्ष मां देवि ! जन्मसंसारसागरात् ॥ (यामल)

५ मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिद्रवां प्रिये ॥
बिसतन्तुस्वरूपां तां विन्दुत्रिवलयां प्रिये । (ज्ञानार्णवतन्त्र)

६ यदोल्लसति श्रृङ्गार-पीठात् कुटिलरूपिणी ॥
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम् । (वामकेश्वर तन्त्र)

७ अष्टधा कुण्डलीभूतामृज्वीं कुर्यात्तु कुण्डलीम् ॥ (योगशिखोपनिषद्)

८ मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता ।
शयिता भुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता ॥
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवं पशुर्यथा ।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत् ॥ (घेरण्डसंहिता)

९ कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः ।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥
कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्रीप्राणधारिणी ।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित् ॥ (गोरक्षपद्धति)

१० आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं दृढ़ाम् ।
अपानवायुनारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान् ॥ (शिवसंहिता)

११ पराशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी । (ललितासहस्रनाम)

१२ शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननी व्यापारवद्धोद्यता ॥ (लघुस्तुतिः)

१३ शक्तिःकुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभा शुभा ।
मूलकन्दफणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत् ॥ (सौन्दर्यलहरी)

१४ मूलाधारे तु या शक्तिर्भुजगाकाररूपिणी।
जीवात्मा परमेशानि तन्मध्ये वर्त्तते सदा ॥ (मातृकाभेद तन्त्र)

१५ कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढ़ानां यस्तां वेत्ति स योगवित् ॥
कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत् परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः ॥
सशैलवनधात्रीणां यथाऽऽधारोऽहिनायकः।
सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाऽऽधारो हि कुण्डली ॥ (हठयोग प्रदी०)

१६ ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गसंस्थिताम्।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम् ॥
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्ववाहिनीम्।
हूँकारवर्णसम्भूतां कुण्डलीं परदेवताम् ॥ (शाक्तानन्दतरङ्गिणी २५)

१७ ध्यायेत्कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्।
चित्कलां यां कुण्डलिनीं तेजोरूपां जगन्मयीम् ॥ (यामल)

१८ मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किञ्चिन्न सिध्येत मंत्रयंत्रार्चनादिकम् ॥
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसंचयैः।
तदा प्रसादमायाति मंत्रयंत्रार्चनादिकम् ॥ (तंत्र)

जो समस्त जगत् को चलाती है उसे महा कुण्डलिनी कहते हैं और व्यष्टिरूप से मानव जीव को चलाने वाली को कुण्डलिनी कहते हैं (योग कुण्डल्युपनिषद्)। यह कुण्डलिनी ही ॐ कार स्वरूपा व्यापक परब्रह्म की शक्ति स्वरूपा, व्यष्टिरूप से मानव देह में केन्द्रीभूत जीवनी शक्ति है जो कि ७२००० नाड़ियों का षट्चक्रों द्वारा सञ्चालन करती है। समस्त योगों का आश्रय कुण्डलिनी ही है। "सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाऽऽधारो हि कुण्डली" (हठयोग प्रदीपिका उ० ३ श्लो० २)। बिना इसके प्रबोध के सर्व क्रियायें

व्यर्थ हैं। जो गुप्त कुण्डलिनी को जगाने की क्रिया जानता है वही षट्चक्र तथा ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, ग्रन्थि वेध द्वारा, सच्चिदानन्द परब्रह्म में लीन हो सकता है और उसे ही यथार्थ योगी कहते हैं।

स्पष्ट है कि जैसा इस पुस्तक के प्राक्कथन (प्रथम संस्करण) के पृष्ठ ५ में उद्धरण भावचूडामणि, भैरवडामर, यामल आदि के दिए हैं उनके अनुसार आध्यात्मिक विज्ञान का अर्थ उसी वैज्ञानिक भाषा से ही होता है। अतः कुण्डलिनी को सुप्त भुजगाकार या सर्पिणी कहने का तात्पर्य उसका प्रतीक है। यह केवल सुप्त प्राण शक्ति है जिसे योगाभ्यास द्वारा जाग्रत किया जाता है। यही परा शब्द स्वरूपा ॐ कार है। ' **एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति"**। कुण्डलिनी का ३½ फेरा परा शब्द ॐ कार के अ+उ+म+ अर्धमात्रा का स्वरूप है। अ से अग्नि, उ से वायु, म से सूर्य्य, अर्धमात्रा से वारुणी (अमृत) का बोध होता है। इन चार के प्रत्येक का तीन भाग होने से १२ मात्रा ॐ कार—कुण्डलिनी के होते हैं। यथाः—

योषणी प्रथमा मात्रा, विद्युन्माला तथा परा।
पतङ्गी च तृतीया स्याच्चतुर्थी वायुवेगिनी॥
पंचमी नामधेया च षष्ठी चैन्द्री विधीयते।
सप्तमी वैष्णवी नाम शङ्करी च तथाष्टमी॥
नवमी महती नाम ध्रुवेति दशमी मता।
एकादशी भवेत् मैनी ब्राह्मीति द्वादशी मता॥ (यामल)

इसी प्रकार पाश्चात्य शरीर— नाडी–तथा मनोविज्ञानानुसार [1] सहस्रार (Cerebrum) को चार हिस्सों में बाँटा है और इन प्रत्येक हिस्सों का मुख्यतः तीन भाग माना है ऐसे १२ भाग होते हैं और इस व्याख्या से हमारे

1. Modern Anatomy (Gray's), Neuroanatomy (Mettler) Physiological–Psychology (Morgan).

योग शास्त्र की पूर्णता सिद्ध होती है (इसके विशेष विवरण के लिए लेखक का पतञ्जलि योगदर्शन-प्रवेश पुस्तक देखिए) । कुण्डलिनी–प्राण ऐसा विषय है जिसके लिए विशेष लिखा नहीं जा सकता और वह केवल सिद्ध योगी गुरू से ही जाना व सीखा जा सकता है और स्व अनुभव से देखा जाता है।

कुण्डलिनी के जाग्रत होते ही बड़ा वेग उत्पन्न होता है और जो प्रथम विस्फोट होता है उसी को नाद कहते हैं। नाद से जो प्रकाश होता है उसे विन्दु कहते हैं। नाद ही शब्द ब्रह्म है वही ॐकार है। यही ॐकार कुण्डलिनी स्वरूपा आज्ञा चक्र का बीज है। कृष्ण यजुर्वेद के अरुणोपनिषद्, ऋग्वेद के भावरीचोपनिषद् अथर्ववेद, तथा उसके उपनिषद्, योगोपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, योग कुण्डलिन्युपनिषद्, मण्डल ब्राह्मणोपनिषद्, सूक्त, ब्रह्मसूत्र, ब्रह्मदर्शन, न्यायदर्शन व्याख्या, हठयोग संहिता, हठयोग प्रदीपिका, लययोग संहिता, लययोग प्रदीपिका, राजयोग संहिता, ऋक् संहिता, शिव संहिता, घेरण्ड संहिता, गोरक्ष पद्धति, योग वाशिष्ट, श्रीमद्भागवत ४ स्कन्ध, देवी भागवत, रुद्रयामल, ज्ञानार्णव तन्त्र, वामकेश्वर तन्त्र, ज्ञानेश्वरी तन्त्र, सौन्दर्य लहरी इत्यादि में इसका वर्णन है। चैनिक योग दीपिका में "इब्राहिम" ने कुण्डलिनी को स्पिरिट-फायर कहा है। "Voice of the silence," "Science of Seership" में तथा Hodson ने भी हमारे शास्त्रोय मतानुसार कुण्डलिनी को माना है। Theosophical society को मैडम ब्लैवेट्स्की ने बताया है कि प्रकाश की गति १८५००० मील प्रति सेकण्ड है पर कुण्डलिनी की गति ३४५००० मील प्रति सेकण्ड है और यह कासमिक शक्ति है। कुछ पाश्चात्य दार्शनिक विचारकों का मत है कि यह कुण्डलिनी शरीरस्थ वेगस नाड़ी (Vagus Nerve) है जिसको कि हमारे सद्शास्त्र ज्ञान द्वारा व प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा नहीं मानते और इसे न मानने का कारण यह है—

जैसा ऊपर लिखा है कि यह कुण्डलिनी, गुदा स्थान के पास स्वयम्भू लिङ्ग पर वेष्टित जीव शक्ति है और वेगस नाड़ी (Vagus nerve) उस स्थान पर न होकर दूसरे स्थान पर है, इससे स्वतः यह गलत सिद्ध होता है। पाश्चात्य शरीर परिचय, मरे हुए शरीर से ज्ञात होता है न कि जीवित शरीर से। प्रत्येक मनुष्य देह की मृत्यु तभी होती है जब कि यह सुप्त कुण्डलिनी अपना स्थान छोड़कर स्वतः सहस्रार में पराशिव से एकत्व कर शरीर छोड़ देती है। अतः मरने पर कुण्डलिनी मनुष्य देह में नहीं पायी जा सकती। इस सुप्त कुण्डलिनी जीव शक्ति को जो यथा विधि जागृत कर षट् चक्र तथा ग्रन्थि वेध आदि द्वारा सहस्रार में पराशिव से (जीवित अवस्था में) एकत्व कराता है वही अवस्था समाधि या जीवित मृत्यु है। इसी अवस्था का वर्णन कर पैगम्बर मुहम्मद साहब ने हदीस शरीफ में उच्च साधकों को संकेत किया है (कि "मरने से पहले मरना सीखो")।

यह षट् चक्र जो कि मेरु दण्ड के भीतर सुषुम्णा नाड़ी में है इनका वर्णन पाश्चात्य वैद्यक ग्रन्थों (Western Anatomy Cum Physioloyg) में भी पाया जाता है। इनके नाम ये हैं :—

(i) Basic or Pelvic Plexus–coceygeal (ii) Hypogastric plexus–Sacral (iii) Coeliac Axis Plexus–Lumbar (iv) Heart plexus Thoracis (v) Throat–Cirvical plexus (vi) Thalamus plexus besal ganglion.

२—स्वाधिष्ठान चक्र (Sacral–Hypogastric plexus)

लिङ्ग की जड़ के कुछ उपर मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्णा में इस चक्र की स्थिति है। इसका कमल ६ दलों वाला है। यह रस वा जल तत्त्व का द्योतक है और रङ्ग जल के सदृश है। इस चक्र का बीज "वं", शक्ति

"राकिनी" और अधिष्ठातृ देव "विष्णु" हैं। यह चक्र "अपान प्राण" का सञ्चालक है।

३—मणिपूर चक्र (Lumbar Coeliac Axis plexus)

नाभि के पीछे मेरु दण्ड के भीतर सुषुम्णा में इस चक्र की स्थिति है और इसका कमल १० दलों वाला है। यह अग्नि-'तेज' तत्त्व का द्योतक है। गुण रूप और रङ्ग अग्नि के सदृश हैं। इस चक्र का बीज "रं" शक्ति "लाकिनी" और अधिष्ठातृ देव "रुद्र" है। यह चक्र 'समान प्राण" का सञ्चालक है।

४—अनाहत चक्र (Coracis-Heart plexus)

हृदय के सामने मेरु दण्ड के भीतर सुषुम्णा में इस चक्र की स्थिति है और इसका कमल १२ दलों वाला है। यह 'वायु" तत्त्व का द्योतक है। गुण "स्पर्श" और रङ्ग "धूम्र वर्ण सदृश" है। इस चक्र का बीज "यं", शक्ति "काकिनी" और अधिष्ठातृ देव "ईश्वर" है। इसमें एक लिंग है जिसे "वाण लिंग" कहते हैं। इस बाण लिंग के ऊपर एक महान् सूक्ष्म छिद्र है जिसपर "हृत्पुण्डरीक" कमल है। इस स्थान पर योगी अपने उपास्य देवता का ध्यान किया करते हैं। यह चक्र 'समान प्राण प्रतिविम्ब" का सञ्चालक है। ईसाई धर्म में इसी चक्र को "गुप्त गुलाब" (Mystic-rose) और चैनिक धर्म में "कनक कमल" (आइन्चिन) कहा है।

५—विशुद्धचक्र (Plexus of purification or Throat plexus.)

कण्ठ देश की जड़ में मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्णा में यह चक्र स्थित है और इसका कमल १६ दलों वाला है। यह चक्र "आकाश" तत्त्व का द्योतक, गुण 'शब्द" अथवा "स्वर", रंग 'धूम्र" है। इस चक्र का बीज "हं", शक्ति "शाकिनी" और अधिष्ठातृ देव "सदाशिव" है। यह चक्र ब्रह्मद्वार कहा जाता है और "उदान प्राण" का संचालक है।

६—आज्ञा चक्र (2–Thalamus, the besal ganglion)

भ्रूमध्य के सामने मेरुदण्ड के ऊपरी भाग सुषुम्णा शीर्ष में यह चक्र स्थित है और इसका कमल दो दलों वाला है। इन दलों के बगल में आगे की ओर (१) पाताल लिङ्ग या शालिग्राम (Pituitary) और (२) इतर:लिङ्ग (Pineal) है यह चक्र 'महत्'' तत्त्व का द्योतक है। गुण 'नाद' और उसके ऊपर "विन्दु"; रंग "श्वेतवर्ण" है। इस चक्र का बीज "ॐ"; शक्ति 'हाकिनी" या "सिद्ध काली" और अधिष्ठातृ देव "शम्भू" या "ज्योतिष्मान् बिन्दु" है। इसको जाबालोपनिषद् में अविमुक्त काशी बताया है। इसका तेज सूर्य चन्द्र के सम्मिलिन तेज से भी अधिक प्रबल है और इसी स्थान का योगी ध्यान करते हैं (कठोपनिषद् ५–१५; आनंद लहरी) जिसे अन्धकार में असंख्य ज्योति कहा है। इसी स्थान पर परमेष्ठी गुरु, परब्रह्म की आज्ञा योगियों को ज्ञात होती हैं। इसीलिये इसे आज्ञा चक्र कहते हैं। इस कमल के पीछे चतुर्थ गुहा है (4th Ventricle)

७—सहस्रार (Thousand Pettled Lotus in front of anterior Fontanelle Cerebrum)

यह आज्ञा चक्र के ऊपर एक सहस्र कमलदल वाला चक्र है। यहाँ कुण्डलिनी, षट्चक्रों के गुण (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मन) तत्त्वों को क्रमशः वेध अथवा लय करती हुई अपने अन्तिम स्थान सहस्रार में पहुँचती है। इसीलिये इसको "लय योग" कहते हैं। यह सहस्रार इसलिये कहा जाता है कि षट्चक्रों के कमलदलों पर से होती हुई कुण्डलिनी के ऊपर जाने व फिर उसी रास्ते से अपने स्थान मूलाधार में वापस आने से कमल के दलों का १०० अंक होता है और इन दस इन्द्रियों के गुणों से गुणा करने से १००० होता है और यही १००० कमलदल है। इसी स्थान पर कुण्डलिनी का पराशिव से अभेदात्मक मिलन होता है और यही स्थान समस्त विश्व के रचयिता परा प्रकृति तथा परा पुरुष या परब्रह्म का स्थान है।

सहस्रारे परशिवैः कुण्डल्या मेलनं शिवे !! (योगिनीतन्त्र)

इसी स्थान पर योगी अपने आपको जानकर समाधि तथा मोक्ष का अधिकारी होता है। ऊपर जो प्रत्येक चक्रों में कमलदल लिखे गये हैं वे सब नीचे की ओर झुके या अविकसित रहते हैं। जब सुप्त कुण्डलिनी को योगी जगाकर इन पर से होते हुए सहस्रार में ले जाता है तब वे सब विकसित हो जाते हैं और उपर्युक्त तीन "लिङ्गों" के अनुभव का फल होता है तथा योगी परम परम पद को प्राप्त करता है। प्रत्येक चक्रों के सम्बन्धित दलों, तत्त्वों तथा तत्त्वों के बीज, रंगों, यन्त्रों इत्यादि का सूक्ष्मतर विचार गुरु-गम्य है और स्व अनुभव द्वारा ही जाना जाता है। अतः इस विषय में आगे लिखना अप्रासंगिक प्रतीत होगा क्योंकि साधक की अलग अलग अवस्थानुसार वे सूक्ष्मतर होते हैं।

आवश्यक

पृष्ठ २८ में यह बताया गया है कि साधना द्वारा स्वपिण्ड ज्ञान से ब्रह्मज्ञान होता है और दोनों एकत्व सम्बन्ध से युक्त हैं (रुद्रयामल, महानिर्वाण तन्त्र, ज्ञानसंकलिनी तन्त्र, शाक्तानन्द तरङ्गिणी, लययोग संहिता, शिव संहिता, ईशावास्योपनिषद्, श्रीमद्भागवत, गरुड पुराण इत्यादि)। अतएव उपर्युक्त षट चक्र जो मनुष्य देह के मेरुदण्ड के अन्दर सुषुम्णा में पाये जाते हैं तथा वेही वेदों में व्यक्त षट् मण्डल (जिनकी व्याख्या प्रथम अध्याय में की गई है) जिनसे होती हुई आत्मा इस स्थूल देह में अवतीर्ण हुई, ये दोनों एकत्व सम्बन्ध से युक्त हैं। कुण्डलिनी योग में, आत्मा (कुण्डलिनी) को परब्रह्म परमात्मा में लय करके, मुक्ति प्राप्त करना ध्येय होता है।

कबिरा धारा अगम की सत्गुरु दियो सिखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करो स्वामी संग लगाय॥

तथा, उलटे पवन षट्चक्रवेधा मेरडण्ड सरपूरा (कबीर)।

षट् चक्र—षट् मण्डल वा षट् लोक वा षट् कोण

परा, पश्यन्ती, मध्यमा, ऋग्वेद १।१६४।१०

कोष	षट्चक्र	तत्व	गुण	वीज	शक्ति	अधिष्ठातृ देव	षट्मण्डल	लोक
प्राण मय	१—मूलाधार	पृथ्वी Solid	गन्ध	लं	डाकिनी	ब्रह्मा	पृथ्वी	भूः
मनो मय	२—स्वाधिष्ठान	जल Liquid	रस	वं	राकिनी	विष्णु	चन्द्र	भुवः
विज्ञान मय	३—मणिपूर	अग्नि तेज Gaseous	रूप	रं	लाकिनी	रुद्र	सूर्य	स्वः
आनंद	४—अनाहत	वायु Automic	स्पर्श	यं	काकिनी	ईश्वर	परमेष्ठी	महः
ज्ञान	५—विशुद्ध	आकाश Eletronic	शब्द	हं	साकिनी	सदाशिव	स्वयम्भू	जनः
तपः	६—आज्ञा	मन Neutron	महत्	ॐ	हाकिनी	शम्भु	ज्योतिष् मानबिन्दु	तपः
सत्य	सहस्रार	अव्यक्त Proton	मुक्ति		अव्यक्तपराशक्ति कुण्डलिनी	अव्यक्त पराशिव	अक्षरब्रह्म	सत्यम्

अध्याय—६

अष्टाङ्गयोग अथवा कुण्डलिनी उत्थान क्रिया

सुप्त कुण्डलिनी को जागृत कर षट् चक्रों तथा तीन बाण लिङ्गों को वेध कर सहस्रार में पहुंचाने के लिये और इस तरह मोक्ष प्राप्त करने के लिये योगी को योग के आठ अङ्गों (सोपानों) की क्रिया करना आवश्यक है।

(नारदपुराण पूर्वभाग १ पाद; महाभारत पर्व ३३।७३-७४; सामवेदीय जाबाल दर्शनोपनिषद्, ऋग्वेदीय सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्-द्वितीय खण्ड इत्यादि)

ये आठ अङ्ग निम्नांकित हैं--

(१) यम (२) नियम (३) आसन (मुद्रा, वंध, वेध) यह १ से ३ तक स्थूल क्रिया कहलाती है; (४) प्राणायाम (स्वरोदय ज्ञान) यह सूक्ष्म क्रिया कहलाती है; (५) प्रत्याहार (६) धारणा (षट् चक्र वेध) नादानुसन्धान; (७) ध्यान (८) लय क्रिया व समाधि। इनका लक्षण निम्नलिखित है। यथा :—

स्थूल क्रिया

यम

१ यम—अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः (पातञ्जल योग दर्शन—साधनपाद २-३०)।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँचों को यम कहते हैं। ये सार्वभौम होने पर महाव्रत हो जाते हैं।

सर्वहिंसाविनिर्मुक्तः सर्व्वप्राणिहिते रतः। सोऽस्मिन् शास्त्रेऽधिकारी
(योगिनिहृदये)

अहिंसा—किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का मन, वचन व कर्म से भय व दुःख न देना अहिंसा है। यह साधन की आधार शिला है।

अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर योगी के निकट, सभी वैर का त्याग करते हैं।

सत्य--सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः, सत्येन लभ्यस्तपसाह्येष आत्मा, (मुंडो० ५।३।१)

जीवात्माओं के निहित हित में लेश मात्र भी झूठ न बोलने को सत्य कहते हैं। सत्यवादी की ही जय होती है। दूसरे की नहीं, सत्य से देवयान मार्ग सदा प्रस्तुत रहता है। सत्य से प्राणी परमात्मतत्त्व को प्राप्त होता है। अतः हितकर, प्रिय और यथार्थ वचन जिसमें लेशमात्र भी झूठ न हो बोलना चाहिए। सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर योगी में वरदान या शाप की शक्ति प्राप्त होती है।

(याज्ञवल्क्य संहिता)

अस्तेय—कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निःस्पृहः।
अस्तेयमिति सम्प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(याज्ञवल्क्य संहिता)

कर्म, मन या वाणी से दूसरे के द्रव्यों (स्वत्वों) की, अपहरण, चोरी, या इच्छा न करना अस्तेय है। अस्तेय दृढ़ होने पर योगी को सर्वप्रकार के रत्नों की जानकारी होती है।

ब्रह्मचर्य—कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्था सु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥ (याज्ञवल्क्य संहिता)

ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः। (व्यासः)

हर अवस्था में कर्म, वचन या वाणी से सदा सब जगह मैथुन के त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं। गुप्तेन्द्रिय द्वारा होने वाले सुखों को संयम से त्यागना ब्रह्मचर्य है। इसके दृढ़ होने से योगी को सामर्थ्य लाभ होता है। दक्ष संहिता में आठ प्रकार के मैथुनों का वर्णन है यथा :—

(१) स्मरण (२) कीर्तन (३) हँसी मजाक (४) रागपूर्वक दर्शन

(५) एकान्त में वार्तालाप (६) सङ्कल्प (७) मैथुन का प्रयत्न (८) प्रत्यक्ष मैथुन । अतः इन आठों मैथुनों को कर्म, वचन और वाणी से सर्वदा त्यागना है । स्वधर्मपत्नी से उचितकाल में सहवास से ब्रह्मचर्य खण्डित नहीं होता ।

अपरिग्रह—

अपने लिये धन, सम्पत्ति आदि भोग विषयों का सर्वदा त्याग अपरिग्रह है । अपरिग्रह दृढ़ होने पर योगी को अपना तथा दूसरों के पूर्व जन्म का ज्ञान होता है ।

उपर्युक्त अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पाँच प्रकार का यम श्रीपातञ्जलयोग दर्शन में कहा है । श्रीव्यासजी ने श्रीमद्भागवत के ११ स्कन्ध के १६ अध्याय में १२ प्रकार के यम बताये हैं यथा :—

(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) असंग (५) लज्जा (६) अपरिग्रह (७) आस्तिकता (८) ब्रह्मचर्य (९) मौन (१०) स्थिरता (११) क्षमा (१२) अभय । इसीसे मिलते जुलते १० यम हठयोग प्रदीपिका (प्र० उ० श्लो० १) में बताये गये हैं ।

२—नियम

शौच-सन्तोषतः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।

(पातञ्जलयोग दर्शन २–३२)

(१) शौच (२) सन्तोष (३) तप (४) स्वाध्याय और (५) ईश्वर में शरणागति; ये पाँच नियम हैं । इनका लक्षण यथाक्रम निम्नलिखित है :—

(१) शौच—स्वशरीर की बाह्य तथा अन्तःकरण की शुद्धिको शौच कहते हैं । बाह्य शुद्धि से योगी को अपने में आसक्ति नहीं रहती और दूसरे मनुष्यों के संग की प्रवृत्ति नहीं रहती । अन्तःकरण की शुद्धि से मनमें

प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश होना और आत्मसाक्षात्कार की योग्यता होती है।

(२) सन्तोष—केवल जीवन निर्वाह से इतर किसी वस्तु की इच्छा न रखना और हर परिस्थितियों में संतुष्ट रहने को संतोष कहते हैं। संतोष से सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है।

(३) तप—मिताहार करते हुये अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और देश, काल, युग योग्यतानुसार स्वधर्म का विधिपूर्वक पालन, शास्त्रोक्त भूत शुद्धि, मानस पूजा तथा व्रतों द्वारा भूख, प्यास, शीत, उष्ण, उठना, बैठना आदि द्वन्द्वों को सहन करने को तप कहा गया है। तप के प्रभाव से जब अशुद्धियों का नाश होता है तब शरीर और इन्द्रियाँ सिद्ध होती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अ० १७ श्लो० १४–१५–१६–१७–१८ और १९ में तप का त्रिविध (१) शारीरिक (२) वाचनिक आर (३) मानसिक का त्रिभेद तामसिक, राजसिक और सात्विक बताया गया है।

मनुस्मृति में—रसायनादि औषध, शारीरिक निरोगता, वेदादिक विद्या और अनेक प्रकार की विभूतियों को प्राप्ति, तप द्वारा होती है, ऐसा बताया गया है।

(४) स्वाध्याय—वेद, शास्त्र, तन्त्र आदि मोक्ष शास्त्रों का पाठ, अध्ययन तथा ॐकार स्व इष्ट देवता का सविधान मानस जप करना, स्वाध्याय है। इससे इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है।

(५) ईश्वर प्रणिधान—सर्व कर्मों को वाणी, मन, चेष्टा धन और प्राण द्वारा ईश्वर में अर्पण करना तथा सदा उसके शरणापन्न हो जाने को ईश्वर प्रणिधान कहा गया है। इससे समाधि की सिद्धि भी होती है। ईश्वर को जीवन समर्पण करने वाला चण्डाल भी योगी से श्रेष्ठ है (श्रीमद्भागवत ७–९–१०)।

याज्ञवल्क्य ने नियम के निरूपण में १० भेद बताये हैं यथा—(१) तप (२) संतोष (३) आस्तिक्य (४) दान (५) ईश्वरपूजन (६) सिद्धान्त श्रवण (७) ह्री (८) मति (९) जप (१०) हुत। इन्हीं १० को हठयोग प्रदीपिका उ० प्र० श्लो० २ में तथा लय योग संहिता नि० १-१५ में बताया गया है।

उपर्युक्त यम और नियम ही यौगिक साधना की मुख्य आधार शिला हैं और बिना किसी तरह संकोच कल्पना किये अविच्छिन्न रूप से सविधि अनुष्ठान करने पर योगी को काम्य तथा मुक्ति प्राप्ति होती है। संसार के सभी जीवित धर्म इस तरह के मिलते जुलते नियमों का पालन कठोरता से करवाते आये हैं।

३—आसन (i) मुद्रा (ii) बंध (iii) वेध

आसन--आसन का अर्थ दोहरा है; (क) जिस पर बैठा जाय उसे आसन कहते हैं (ख) जिस तरह योगी स्थिरता से यौगिक क्रियाओं के लिये निर्धारित समय तक सुखपूर्वक बैठ सके।

सर्वसिद्ध्यै व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्ध्यै मृगाजिनम्।
वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं श्रीविवर्धनम्॥

(क) किसी कड़े सूखे लकड़ी के पटरे पर, जिसकी लम्बाई चौड़ाई इतनी हो जिस पर सुख से बैठा जा सके, उसके उपर कुशा का सूखा आसन, उसपर मोटे ऊनी वस्त्र या कम्बल का आसन, उस पर मोटे श्वेत सूती वस्त्र का आसन और उसके ऊपर श्वेत रेशमी वस्त्र का आसन या मृगचर्म अथवा व्याघ्रचर्म होना आवश्यक है। इन सबको मिलाकर एक आसन को २ इञ्च से कम मोटा नहीं होना चाहिये। बहुधा साधक इस पर विशेष ध्यान नहीं रखते। इसे आवश्यक और विशेष ध्यान देने योग्य कहा गया है। क्योंकि जब साधक यौगिक साधनाओं को करता है उस समय उसके शरीर में पर्याप्त

विद्युत् तेज का सञ्चार होता है जो कि आसन ठीक न होने के कारण पृथ्वी में विलीन हो जाता है और साधनाओं के फल प्राप्त नहीं होते। बैठने के आसन कई प्रकार के हैं पर उपर्युक्त प्रकार फलप्रद हैं।

(ख) प्राणिमात्र के निश्चल एवं सुखपूर्वक बैठने को आसन कहा गया है। इस संसार में जितने जीव जन्तु हैं उतने ही प्रकार के आसन हैं। इसमें घेरण्ड संहिता के अनुसार ८४ आसन श्रेष्ठ हैं और इनमें से ३२ आसन लाभदायक हैं। उनके नाम निम्नांकित हैं :—

(१) सिद्धासन (२) पद्मासन (३) भद्रासन (४) मुक्तासन (५) वज्रासन (६) स्वस्तिकासन (७) सिंहासन (८) गोमुखासन (९) वीरासन (१०) धनुरासन (११) मृतासन (१२) गुप्तासन (१३) मत्स्यासन (१४) मत्स्येन्द्रासन (१५) गोरक्षासन (१६) पश्चिमोत्तानासन (१७) उत्कटासन (१८) संकटासन (१९) मयूरासन (२०) कुक्कुटासन (२१) कूर्मासन (२२) उत्तानकूर्मासन (२३) उत्तान मण्डूकासन (२४) वृक्षासन (२५) मण्डूकासन (२६) गरुड़ासन (२७) वृषासन (२८) शलभासन (२९) मकरासन (३०) उष्ट्रासन (३१) भुजंगासन (३२) योगासन (घे० सं० उ० २ श्लो० ३ से ६)।

उपर्युक्त ३२ आसनों में से वशिष्ठ आदि ऋषियों के मत से कुण्डलिनी योग में ३ आसन (i) सिद्धासन (ii) पद्मासन और (iii) स्वस्तिकासन लाभदायक हैं (लय योग सं० अ० ८)। इनके लक्षण निम्नलिखित हैं :—

(क) सिद्धासन—बायें पैर की एड़ी को स्वगुदा और लिङ्ग के बीच में जो योनि (कुण्डलिनी) का स्थान है, दबाव देकर रक्खे और दाहिने पैर की एड़ी को लिङ्ग स्थान के ऊपर रखकर दबावे जिससे कि दोनों पैर की एड़ियाँ बराबर ऊपर नीचे हो जावें। फिर चिबुक (ठोड़ी) को

आगे झुकाकर छाती पर लगावे, मेरुदण्ड को सीधा रखे, एकाग्रचित्त होकर दोनों भौंहों के बीच (भृकुटि) को दोनों नेत्रों की अचल दृष्टि से देखता रहे। इस आसन की सिद्धि से बंध त्रय (जो आगे लिखे जायँगे) में सुगमता होती है।

(ख) पद्मासन—बायें पैर को दाहिनी जाँघ के मूल पर रक्खे, और दाहिने पैर को बायीं जाँघ के मूल पर रक्खे; बायें हाथ को बायें जंघे पर दाहिने हाथ को दाहिने जंघे पर, दोनों हाथों की हथेली ऊपर की ओर तथा दोनों हाथों का अंगूठा अपनी तर्जनी उंगली से मिलाकर रक्खे। चिबुक (ठोढ़ी) को आगे झुकाकर छाती पर लगावे, मेरुदण्ड को सीधा रक्खे और नासिका के अग्रभाग को दोनों नेत्रों से अचल दृष्टि से एकाग्रचित्त हो देखता रहे। इस आसन की सिद्धि से प्राणायाम में सुगमता होती है।

(ग) स्वस्तिकासन—दोनों पैरों के तलवों को जाँघों और उरू के बीच लगावे, मेरुदण्ड को सीधा रखकर सीधा बैठे और एकाग्र चित्त हो दोनों भौंहों के बीच (भृकुटि) दोनों नेत्रों से अचल दृष्टि से देखता रहे। इसका नाम स्वस्तिकासन है।

जितेन्द्रिय साधक को आसनों के अभ्यास से निरालसता, उत्साह की वृद्धि, शरीर की निरोगता, वायु की गति का कम होना, होता है। बाकी उपर्युक्त आसनों में से अतिसार, संग्रहणी, कब्जियत, रक्तविकार, कृमि, श्वास, कास, पीड़ा, वातरोग, मेदवृद्धि, अन्त्र वृद्धि, रस-रक्तादि धातु विकार इत्यादि रोग दूर होकर स्वास्थ्य लाभ होता है। आसनों से अनेक लाभ होते हैं परन्तु केवल अनुभवी सद्गुरु योगी से ही सीखकर उनके पास अभ्यास करने से उन्नति होती है अन्यथा विपरीत फल होता देखा गया है।

३–(i) मुद्रा–मुद्रायें निम्नलिखित प्रकार की हैं यथा—

(१) महामुद्रा (२) योनिमुद्रा (३) खेचरीमुद्रा (४) विपरीतकरणी

मुद्रा (५) वज्रौली मुद्रा (६) शक्ति चालिनी मुद्रा (७) विपरीतकारीमुद्रा (८) वज्राणीमुद्रा (६) शक्तिधारणीमुद्रा (१०) ताड़ागीमुद्रा (११) माण्डवीमुद्रा (१२) शाम्भवीमुद्रा (१३) नभोमुद्रा (१४) उन्मनीमुद्रा (१५) प्राङ्मुखीमुद्रा (१६) धारणीमुद्रा और इसके चार उपविभाग जैसे (१७) पार्थिवधारणी (१८) आम्भसीधारणी (१६) वैश्वानरीधारणी (२०) वायवीधारणी।

इन २० मुद्राओं में से कुण्डलिनी योग में सहायक शक्ति चालिनी, योनि और खेचरी यही तीन हैं। इनका स्थूल और सूक्ष्म भेद है।

३-(ii) बन्ध—बन्ध मुख्यतर चार हैं यथा--

(१) मूलबंध (२) महाबंध (३) जालंधर बंध (४) उड्डीयान बंध। इनमें से कुण्डलिनी योग में सहायक ३ बंध, मूल, जालंधर और उड्डीयान ही हैं।

३-(i) मुख्यमुद्रा (ii) मुख्य बंध (iii) वेध

उपर्युक्त मुख्य ३ मुद्रायें, ३ बंध और वेध की संक्षिप्त विधि निम्नलिखित प्रकार की हैं। यथाः--

३-(i) मुख्य मुद्रा--

(१) शक्ति चालिनी मुद्रा--

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥ (हठयोग प्रदीपिका)
शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी। (शिव संहिता)

सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों की एड़ियों को मूलाधार में जोर से दबावे, ठोड़ी हृदय में लगाकर जोर से श्वास-प्रश्वास करे ताकि पेट की अँतड़ियों के दबाव व ढीला होने का प्रभाव मणिपूर चक्र पर पड़े और उसी के साथ गुदा संकोचन, खोलन करे। इससे मूलाधार

की अपान वायु की टक्कर मणिपूर की प्राण वायु पर पड़ने से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होती है। इसका अभ्यास योगी के जितेन्द्रिय होकर लवण, खट्टा; तीता वर्जित परिमित भोजन अथवा केवल दुग्ध पान करके, काम, क्रोध, मोह, अहङ्कार रहित, त्यागवान् होकर प्रति दिन कम से कम चार घड़ी पर्यन्त करने से सुप्त कुण्डलिनी के चलायमान होने में सहायता मिलती है। इसमें सन्देह नहीं।

(२) **योनिमुद्रा**—सिद्धासन लगाकर शरीर के ६ बाहरी द्वारों या छिद्रों को अँगुलियों तथा एड़ियों से यथोचित बन्द करे—दोनों अँगूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनियों से दोनों नेत्रों को, दोनों मध्यमाओं से दोनों नासिका छिद्रों को बन्द करके, गुदा और लिङ्ग को दोनों एड़ियों से अवरोधित करके, जीभ को कौवे के चोंच के समान बनाकर (पूरक प्राणायाम), वायु को अन्दर खींचकर मुँह (दोनों होठों) को कनिष्ठिका से बन्द करके कुम्भक से उसका मेलन अपान वायु से कराते हुए, षट् चक्र के प्रथम चक्र में कुण्डलिनी का ध्यान करे और "हुँ" मन्त्र का मानसिक जप करे। इसके अभ्यास से सुप्त कुण्डलिनी को चालन होने में सहायता मिलती है। बिना शक्तिचालिनी मुद्रा के अभ्यास से योनि मुद्रा सिद्ध नहीं होती।

(३) **खेचरी मुद्रा**—(अथवा लंबिका योग) जिह्वा को काफी लम्बा करके उलटकर (कपाल कुहर) मुँह के अन्दर तालु के बीच नाक की जड़ के नीचे छिद्र में प्रवेश करे, अमरवारुणी पान करे, ताकि श्वास अन्दर बाहर न आ जा सके और दोनों आँखों से भृकुटि (दोनों आँखों के बीच) को देखे। बिना जीभ को काफी लम्बा किये यह मुद्रा असम्भव है। इसके लिये घेरण्ड संहिता, गोरक्ष पद्धति, हठयोग प्रदीपिका आदि ने (१) छेदन (२) चालन (३) दोहन क्रियायें बतायीं हैं जो कि दुःखद और कष्ट कर हैं। इस क्रिया के लिये एक सरल और सुगम मार्ग का आविष्कार परमगुरु स्व० योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय ने

किया था। इस खेचरी मुद्रा के पूर्ण होने पर योगी अपने हृदय की गति को बन्द कर समाधि लाभ करता है। अतएव इसे मुद्राओं में राजा कहा जाता है।

३—(ii) मुख्यबंध (मूल, उड्डियान और जालंधर)।

१—**मूलबन्ध**—गुदा और लिङ्ग के प्रदेश में एड़ियों को दृढ़ लगाकर गुदा मार्ग का संकोचन करे। इससे अपान वायु ऊपर को उठकर प्राण वायु के साथ संयोग करती है। इससे सुप्त कुण्डलिनी में संचार होने से सुषुम्णा में प्रवेश होता है।

२—**उड्डियान बन्ध**—दोनों जंघों को मोड़कर पैरों के तलुओं को परस्पर बराबर मिलाकर बैठे। पेट के अन्दर नाभि चक्र के ऊपर नीचे के भाग को पीठ की ओर खींचे ताकि पेट पीठ की ओर लग जाय और प्राणायाम साधे। इससे नाभि के ऊपर और नीचे के भाग पर अधिक तनाव पड़ने से प्राणवायु का मार्ग सुषुम्णा की ओर होता है।

३—**जालंधर बन्ध**—कण्ठ को सिकोड़ कर ठोड़ी को हृदय पर दृढ़तापूर्वक लगावे इससे शरीरस्थ नाड़ियाँ कसती हैं जिससे इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों के स्तम्भित होने के कारण सुषुम्णा की ओर प्राण वायु का मार्ग होता है और ब्रह्मरंध्र से टपकने वाले अमृत का बन्धन होता है।

३— (iii) वेध (महावेध)

महावेध—कुम्भक प्राणायाम जब उड्डीयान बन्ध करते समय किया जाता है तो उसे महावेध कहते हैं।

स्मरण रहे कि जो उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण मुद्राओं, बन्धों व वेध का किया गया है वह केवल जानकारी के लिये ही है। इन्हें केवल पूर्णतः अनुभवी सिद्धयोगी से उसके समक्ष ही सीखना व करना चाहिये। अन्यथा अनिष्ट होने की सम्भावना होती है।

सूक्ष्म क्रिया

४—(क) प्राणायाम (ख) स्वरोदय

अभिवायुं वीत्वर्षा गृणानो इमि मित्रावरुण पूषमानः।
अभिनरं धीजवनं रथेष्ठा मनीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥
(ऋ० ६।६७।४६)

प्राणायामपराः सर्वे प्राणायामपरायणाः।
प्राणायामैर्विशुद्धा ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥
(योगी याज्ञवल्क्य)

४—क-प्राणायाम—नरदेह परिचय से ज्ञात होता है कि मानव शरीर के मुख्य अंग नाड़ियाँ, धमनियाँ रसोत्पादक गुठलियाँ हैं । इन्हें अच्छी तरह से काम करने के लिये ऑक्सीजन से सुसम्पन्न श्रेष्ठ रुधिर की अच्छी मात्रा में आवश्यकता होती है । सुबालोपनिषद् में लिखा है कि प्राण शरीर की रक्षा करता है और नाड़ियाँ रुधिर से पूर्ण हो दहर को भरती हुई पोषण करती हैं । सुश्रुत सू० १४ में कहा है कि "देहस्य रुधिरं मूलं" । अतः श्वास यन्त्र, रुधिर को श्रेष्ठ रखने में मुख्य है, नहीं तो रुधिर विषाक्त हो जाता है । प्राणायाम की प्रक्रिया के समय प्रथमतः अँतड़ियों का जो संचालन व संकुचन होता है उससे अँतड़ियाँ सुदृढ़ होती हैं; दूसरे श्वास यन्त्र फेफड़ा, यकृत आदि भी सुदृढ़ होते हैं । पूरक प्राणायाम में स्नायुओं द्वारा विषाक्त रुधिर कपाल से वापस आता है और उसमें शुद्ध रुधिर धमनियों द्वारा पहुँचता है । यह प्रक्रिया प्राणायाम के साथ उड्डीयान बन्ध करने से और बढ़ जाती है । अतः प्राणायाम प्रक्रिया से मनुष्य शरीर को जो लाभ होता है उसका उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय दिया गया है । प्राणायाम से प्राण और चित्त दोनों निश्चल हो जाते हैं (हठयोग प्रदीपिका उ० ४ श्लो० २१) और इसका आध्यात्मिक महत्त्व अत्यन्त उच्चकोटि का है । जब श्वास का स्पंदन

प्राणायाम द्वारा सुषुम्णा में प्रवेश करता है तब शरीर के समस्त दोष दूर हो जाते हैं और सब नाड़ियाँ तथा धमनियाँ शुद्ध हो जाती हैं। षट्कर्म की आवश्यकता नहीं रहती। (याज्ञवल्क्यादि, गोरक्षपद्धति)। षट्कर्म ६ प्रकार के शुद्धि कर्मों को कहते हैं। यथा :—

(१) धौतिः (चार प्रकार की) (२) वस्ति (दो प्रकार की) (३) नेति (४) त्राटक (५) नौलि (६) कपालभाति (३ प्रकार की)

प्राणायाम के लक्षण

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥

उपर्युक्त आसन ठीक (सिद्ध) हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति का अवरोधन करने को प्राणायाम कहते हैं (योग सू० २–४६)। इस श्वास (बाहर की वायु का शरीर में प्रवेश) और प्रश्वास (भीतर की वायु का बाहर निकालना) की गति नासिका छिद्रों द्वारा श्वास यन्त्रों के संकुचन और आकुंचन से होती है। प्राणायाम से शरीर में विश्व शक्ति का संचय होता है।

प्राणायाम के तीन विभाग हैं (१) रेचक (२) पूरक और (३) कुम्भक। यह दो तरह का होता है (क) निगर्भ और (ख) सगर्भ।

रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम

(१) रेचक—प्रश्वास को नासिका छिद्रों द्वारा शरीर से धीरे धीरे बिल्कुल बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। वेग से रेचक करने से बल की हानि होती है तथा रोग उत्पन्न होते हैं।

(२) पूरक—श्वास को नासिका छिद्रो द्वारा शरीर के अन्दर धीरे-धीरे भरपूर भरने को पूरक कहते हैं।

(३) कुम्भक—श्वास जो कि पूरक द्वारा शरीर के अन्दर भरपूर भरा है उसे सब द्वारों को बन्द कर प्रश्वास को रोकने को कुम्भक कहते हैं; अथवा प्राण की क्रिया है श्वास और अपान की क्रिया है प्रश्वास और इन दोनों

की गति का अवरुद्ध होना कुम्भक है। कुम्भक के आठ भेद हैं यथा :— (१) सूर्यभेदि (२) उज्जायी (३) शीतकारी (४) शीतली (५) भस्त्रिका (६) भ्रामरी (७) मूर्छा (८) प्लावनी। यह दो प्रकार का है यथा :—(१) सहित कुम्भक (२) केवल कुम्भक।

१—श्वास को भरपूर कुम्भक अथवा भरपूर रेचक करे तो सहित कुम्भक होता है।

२—जब श्वास को सुख पूर्वक अन्दर व बाहर के विषयों को त्याग कर कुम्भक करे तो वह केवल कुम्भक होता है (योगसूत्र २-५१)।

(क) निगर्भ—जो प्राणायाम मात्रा व मन्त्र विहीन है उसे निगर्भ कहते हैं। इस तरह के अयुक्त प्राणायाम से कुण्डलिनी उत्थान में कोई लाभ नहीं होता। अयुक्त प्राणायाम से हुचकी, श्वास, कास, सिर, नेत्र, कर्ण पीड़ा तथा नाना प्रकार के बात रोग और ज्वर आदि रोग होते हैं।

(ख) सगर्भ—मात्रा (समय का सूक्ष्म विभाग) सहित प्राणायाम के समय में ॐकार अथवा स्वइष्ट बीज मन्त्र का मानसिक जप करने को सगर्भ कहते हैं। रेचक, पूरक और कुम्भक अनुलोभ विलोम से करना चाहिये और इसकी मात्रा प्रथमतः (सेकेण्डों में) ४—१६—८ है। एक से ६ तक के अङ्क गिनने में जितना सूक्ष्म समय लगता है वह भी कुछ योगियों के मत से एक मात्रा कही जाती है। स्कन्द पुराण में कहा है कि जितने समय में सोए मनुष्य का श्वास, प्रश्वास आवे जावे उतना समय मात्रा है। जब तक केवल कुम्भक की सिद्धि न हो १०—१० की मात्रा क्रमशः बढ़ाकर ९० मात्रा पर्यन्त अथवा इससे भी अधिक, सामर्थ्य होने पर करे। मात्रा जो क्रमशः बढ़ती है उसके तीन रूप हैं।

(१) कनिष्ठ—इसमें शरीर में पसीना आता है।

(२) मध्यम—इसमें शरीर में कम्पन होता है।

(३) उत्तम—इसमें प्राण ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचता है।

(योग सूत्र २।५३)

केवल कुम्भक की सिद्धि से मन स्थिर होकर सुप्त कुण्डलिनी का बोध होता है। योग साधना के सब अङ्गों में प्राणायाम ही प्रमुख है। क्योंकि केवल इससे भी समाधि हो सकती है।

प्राणायाम का स्थान, काल तथा ज्ञातव्य

जितेन्द्रिय मिताहारी साधक, स्वच्छ, सुंदर एवं धार्मिक स्थान में, छिद्र रहित छोटे कमरे में जहाँ धनुष प्रमाण पर्यंत शिला, अग्नि, जल न हो, सम्पूर्ण चिन्ताओं से रहित एकाग्रचित होकर प्राणायाम करे। वसंत ऋतु (चैत, वैशाख) अथवा शरद् ऋतु (कुंवार, कार्तिक) में ही प्राणायाम का अभ्यास आरंभ करे। दूसरी ऋतुओं में प्रारम्भ करने से रोग पैदा होता है। **स्मरण रहे कि प्राणायाम की साधना दुधारी तलवार है। अतएव इसे अनुभवी सद्गुरु योगी से ही सीखकर उनके निकट इसका अभ्यास करे। अन्यथा भयंकर परिणाम होते देखा गया है।**

४--(ख) स्वरोदय

श्वास प्रश्वास की गति का ज्ञान प्राप्त करने को स्वरोदय कहते हैं। जैसा ऊपर लिखा है कि इड़ा नाड़ी का अन्त बायीं नाक में और पिङ्गला नाड़ी का अन्त दाहिनी नाक में होता है। इन दोनों में से एकका प्रतिदिन सूर्योदय से २½ घड़ी तक श्वास चलता है और तत्पश्चात् बारी बारी से २½ घड़ी तक प्रत्येक का चलता रहता है। इन दोनों के संधि काल में जो लगभग दो मिनट का होता है, दोनों नाक से श्वास चलता है

और यही सुषुम्णा का बहाव है। यही समय पूजा, प्राणायाम तथा यौगिक क्रियाओं के लिये श्रेष्ठ माना गया है। इस संधिकाल को जिसमें कि सुषुम्णा का बहाव होता है जितना बढ़ाया जाय उतने ही शीघ्र यौगिक अभ्यासों में सफलता मिलती है। स्वस्थ मनुष्य में शुक्ल पक्ष की १, २ और ३ अर्थात् तीन दिन तक प्रतिदिन प्रातः सूर्योदय से २½ घड़ी तक दाहिनी नाक से पिंगला का प्रवाह होता है और फिर इसके बाद इड़ा और पिङ्गला का क्रम से प्रत्येक का २½, २½ घड़ी पर्यन्त चलता है। इन तीन दिनों के बाद प्रत्येक का क्रम तीन दिन की पारी से प्रातः सूर्योदय से प्रारम्भ होता है। इस नियम के विरुद्ध यदि श्वास चले तो किसी प्रकार की पीड़ा होगी। रोगों का ज्ञान और उसका उपाय स्वरोदय ज्ञान से संभव है। यहाँ तक कि भविष्य व मृत्युज्ञान, रोग निवारण, शत्रु विजय, इच्छित पुत्रोत्पत्ति, लक्ष्मी प्राप्ति इत्यादि इस श्वास विज्ञान के अभ्यास से जाना व ठीक किया जाता है तथा प्रत्यक्ष फलप्रद है (लय योग संहिता-स्वरोदय कथनम् १४)। इसके ग्रन्थ दुर्लभ हैं तथा इसका विषय गहन है। विशेष जानकारी के लिए नरपति जय-चर्या योग स्वरोदय, शिव स्वरोदय, पवनविजय स्वरोदय आदि देखिये।

५--प्रत्याहार

विषयेभ्य इन्द्रियार्थेभ्यो मनो निरोधनं प्रत्याहारः। (मं०ब्राह्मणोपनिषद्)
स्वविषयाऽसम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपाऽनुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥
(यो० सू० सा० ५४)

अपनी इन्द्रियों का विषयों के संग से रहित होकर, चित्त स्वरूपानुसार हो जाना, प्रत्याहार कहा गया है (लययोग सं० प्रत्याहार वर्णनम् श्लो० १ से १५)। जब प्राणायाम से वायु कम से कम १० मिनट तक निरोध हो सके तभी प्रत्याहार प्रारम्भ करना चाहिये।

६—धारणा-(क) नादानुसन्धान, (ख) षट्चक्रवेध

धारणा—देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ (यो० सू० वि० १)

चित्त को किसी एक देश (चक्र) में पाँच घड़ी पर्यन्त स्थित करने को धारणा कहते हैं। लययोग संहितानुसार धारणा का पाँच प्रकार बताया गया है अर्थात् पञ्चभूतों को पृथक् पृथक् संधारण करना "मुनिश्रेष्ठः साधयेत् पंचधारण मुद्रया"।

क-नादानुसंधान—

१—नादानुसंधान नमोस्तु तुभ्यम्।
त्वां मन्महे मान्यतमं लयानाम् ॥ (योगतारावलि शंकराचार्यकृत)
२—बद्धं तु नादबन्धेन मनः संत्यज्य चापलम्। (योगरहस्य)
३—नादानुसंधानसमाधिभाजां योगीश्वराणां हृदि वर्धमानः।
(योगसंध्या)

षट् चक्र वेध हो जाने पर जब कुण्डलिनी का सहस्रार में पराशिव के साथ जो निष्क्रम होता है वही अनाहत शब्द नाद तत्त्व है। यह नाद नाना प्रकार का होता है (हठ योग प्र० उ० ४ श्लो० ८५) इसके अनुसन्धान को नादानुसंधान कहते हैं (लययोग सं०)। नादानुसंधानम् के अनुसार इसमें मुख्य (१) आरम्भ (२) घटा (३) परिचया (४) निष्पत्ति चार अवस्थायें होती हैं। (ऋग्वेदीय नादविन्दुपनिषद् २-३ अध्याय। कृष्णयजुर्वेदीय अमृत-नादोपनिषद्।)

ख-षट्चक्र वेध—जब तक षट्चक्र वेध पूर्णतः नहीं होता तब तक चित्त किसी एक चक्र पर स्थिर नहीं होता। अतः षट् चक्र वेध पूर्ण करने से ही धारणा होती है।

"ज्योतिषा मन्त्रनादाभ्यां षट्चक्राणां हि भेदनम्-धारणा"।
(लययोग संहिता)

७—ध्यान

तत्र प्रत्ययकतानता ध्यानम् । (यो० सू० ३-२)

पूर्वोक्त धारणा में चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहा है। यह अवस्था यदि २४ घण्टे तक रहे तो ध्यान होता है। यह ध्यान तीन प्रकार का होता है। १ स्थूल २ ज्योति और ३ सूक्ष्म निर्गुण (१) स्थूल-इष्टदेव का सगुण ध्यान। (२) ज्योति-परब्रह्ममय जीवात्मास्वरूपिणी कुण्डलिनी का ध्यान, ज्योतिर्ध्यान है। (३) सूक्ष्म निर्गुण—कुण्डलिनी को जगा कर षट् चक्र वेध करता हुआ उसके सहस्रार में लीन होने का ध्यान स्थूल ध्यान से १०० गुना ज्योतिर्ध्यान तथा ज्योतिर्ध्यान से लाख गुना सूक्ष्म निर्गुण ध्यान है। (घेरण्ड संहिता उ० ७ श्लो० २१); (लययोग संहिता ध्यान वर्णनम् श्लो० १०)। ध्यान के प्रभाव से योगी की जीवात्मा जीव संज्ञा को त्याग कर परमात्मा में मिल जाती है (विवेक चूड़ामणि) (ईश्वर गीता), परन्तु ध्याता ध्यान और ध्येय का ज्ञान रहता है। साधक को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अष्ट सिद्धियों का वर्णन मण्डल ब्राह्मणोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् पातञ्जल योग सूत्र, घेरण्ड संहिता आदि में पाया जाता है। ये अष्ट सिद्धियाँ निम्नांकित हैं—

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वञ्चाष्टसिद्धयः ॥ (अमरकोश)

(१) अणिमा —अणु के समान सूक्ष्म रूप धारण करना जिससे साधक दूसरों में प्रवेश कर सकता है।

(२) महिमा—शरीर को इच्छानुसार अत्यन्त बड़ा कर लेना।

(३) लघिमा—शरीर को पर से भी अधिक हल्का कर लेना जिससे साधक हवा में उड़ सकता है, पानी पर चल सकता है और एक सेकेण्ड में हजारों मील पहुँच सकता है।

(४) गरिमा—शरीर को पहाड़ सम भारी कर लेना।

(५) प्राप्ति—इच्छानुसार संकल्प मात्र से किसी पदार्थ को प्राप्त कर लेना; भविष्य जान लेना तथा रोगियों को तत्काल अच्छा कर देना।

(६) प्राकाम्य—इच्छानुसार स्व शरीर को सुन्दर स्वस्थ और जवान बना लेना आदि।

(७) वशित्व—पाँच भूतों और उससे उत्पन्न पदार्थों को वश में कर लेना जैसे मनुष्य, स्त्री, जानवर आदि का वश में हो जाना।

(८) ईशित्व—भूत और भौतिक पदार्थों को नाना रूपों में उत्पन्न करना और उन पर साम्राज्य करना या ईश्वरी सर्व शक्तियों का होना।

८—समाधि वा लयक्रिया

१—तदेवाऽर्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। (योग सूत्र३-३)

पूर्वोक्त ध्यान ही समाधि हो जाता है, जब केवल ध्येय स्वरूप मात्र का ही निरन्तर भान होता है।

२—ध्यातृध्येयध्यान-कलनावत् ध्यानम्
तद्रहितं समाधिरिति ध्यानसमाध्योर्विभागः (योगवार्तिक)

३—सलिले सैन्धवं यद्वत् समं भवति योगतः।
तथाऽऽत्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥
(सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद् और लय योग संहिता ४०-२)

जिस तरह नमक जल से मिलकर एक हो जाता है उसी तरह से मन और आत्मा का आत्मस्वरूप हो जाना समाधि है।

४ - तत्समं च द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः।
प्रनष्टसर्वसंकल्पः समाधिः सोऽभिधीयते ॥ (हठयोग प्र० ४-७)

उपर्युक्त समय में जीवात्मा और परमात्मा की एकता होती है और सम्पूर्ण सङ्कल्प जिसमें नष्ट होते हैं उस अवस्था को समाधि कहा है।

५—अपुनर्वासनोत्थानाल्लयो विषयविस्मृतिः।
(ह० यो० प्र० उ० ४-३।४)

सम्पूर्ण विषयों में विस्मृति को लय कहा है।

६—समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः।

(याज्ञवल्क्य संहिता) जीवात्मा का परमात्मा में एकता अवस्था का प्राप्त होना समाधि है।

७—दिन द्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राणसंयमात्। (गोरक्ष द्धति) (श० श्लो० ८४) १२ दिन पर्यंत प्राण वायु के संयम को समाधि कहते हैं।

उपर्युक्त ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय का ज्ञान रहता है और इसके विस्मृत होने पर समाधि होती है। समाधि सिद्ध होने से आत्म एकाकार प्रत्यक्ष होता है इसे लय क्रिया कहा गया है (लय योग सं० लय क्रिया व० १–५)।

समाधि के २ भेद माने गये हैं।

(१) जड़ (२) चैतन्य, या (१) संप्रज्ञात (२) असंप्रज्ञात, या (१) सविकल्प (२) निर्विकल्प।

समाधि के पर्याय हैं :—उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्या शून्य पद, अमनस्क, अद्वैत, निरालंब, निरंजन, जीवनमुक्त, सहजा, तुर्या। हठ यो० प्र० उ०, ४–३। ४)।

मनो विलीयते यत्र पवनस्तत्र लीयते।
पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते॥ (हठयो० प्र० उ०४–२३)
प्रनष्टश्वासनिश्वासः प्रध्वस्तविषयग्रहः।
निश्चेष्टो निर्विकारश्च लयो जयति योगिनाम्॥

(हठयो० प्र० उ० ४–३१)

पवन के लय से मन भी लय होता है। अतएव श्वास और निश्वास को भली प्रकार नष्ट करने से (प्राणायाम से) विषयों का ग्रहण भी नष्ट

होता है तथा अन्तःकरण का विकार भी नष्ट हो जाता है। ऐसा योगियों का लय है। (योगवाशिष्ठ-अमनस्क खंड)। लिङ्ग महापुराण अ० ८ उत्तरार्द्ध, गोरक्षपद्धति श० २ श्लो० १४, हठयोग समाधि इत्यादि में उपर्युक्त (ल० ५) प्रत्याहार, (ल० ६) धारणा (ल० ७) ध्यान (ल० ८) और लय या समाधि प्राप्त होने के लिये २०७३६ प्राणायाम करने की विधि बतायी है :—

धारणा द्वादश प्रोक्ता ध्यानाद्ध्यानविशारदैः।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते॥

१२ प्राणायाम से	१ प्रत्याहार	=	१२ प्राणायाम	
१२ प्रत्याहार से	१ धारणा	=	१४४	,,
१२ धारणा से	१ ध्यान	=	१७२८	,,
१२ ध्यान से	१ समाधि वा लय	=	२०७३६	,,

सिद्ध योगियों ने अनुभव से बताया है कि यम, नियम, आसन, खेचरी-मुद्रा, प्राणायाम आदि की क्रियायें पूर्णतया करने पर ही शक्तिशालिनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। जब इन क्रियाओं के साथ शक्तिचालनी व योनिमुद्रा, सूर्यभेदेन कुम्भक, सगर्भ प्राणायाम, बंध, धारणा, पूर्ण होती है, तभी सुप्त कुण्डलिनी जाग्रत हो कर षट् चक्रों तथा तीन बाणलिंगों को वेध करती हुई सहस्रार में परब्रह्म में लीन होती है। कुण्डलिनी जाग्रण का अभ्यास शुक्ल पक्ष में ही प्रारंभ करना चाहिये। क्योंकि इसी पक्ष में इसका संचार ऊपर की ओर होता है। कृष्ण पक्ष में इसका संचार नीचे की ओर अर्थात् सहस्रार से मूलाधार की ओर होता है।

यह कुण्डलिनी उत्थान क्रिया का क्रम अति संक्षेप में कहा गया है। क्योंकि जैसा पिछले पृष्ठों में कहा गया है, कुण्डलिनी उत्थान अथवा प्राण क्रिया केवल सिद्ध सद्गुरु योगी ही से सीख कर उनके सान्निध्य में ही योग क्रिया करनी चाहिये अन्यथा घोर अनिष्ट होता है।

जब कुण्डलिनी योग सिद्ध हो जाता है तब साधक सर्वज्ञ सर्वगुण सम्पन्न होता है। सब सिद्धियाँ उसे प्राप्त हो जाती हैं जिसका कि वह स्वयं कर्ता हो जाता है तथा परब्रह्म में मिलकर एक स्वरूप हो जाता है।

'अहं ब्रह्मास्मि" "अयमात्मा ब्रह्म" (यजु०)
"यत्र न अन्यत् पश्यन्ति स ब्रह्म" (छांदोग्योपनिषद्)
"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"(मु० उपनिषद्)
"अहं देवो न चान्योऽस्मि" (रुद्रयामल)
"नित्यशुद्धस्वरूपोऽस्मि नित्य-मुक्त-स्वरूपकः" (योग दर्पण)
"अयं परमेश्वरः स्वप्रकाशरूपः स्वात्मा" (तंत्र सार अ० २)
"जीवात्मैव परमात्मा" (वासुदेव मनन)
"कूटस्थं ब्रह्म" (पंच दशी) जीवश्च परमात्मा (अध्यात्म रामायण)
"आत्मैव देवाः सर्वाः" (मनु०)

ऐसा ज्ञान होने से साधक जीवनमुक्त हो जाता है। अपनी इच्छा से अपना चोला छोड़ता है तथा पुनर्जन्म नहीं लेता। उसका कुछ भी बाकी नहीं रहता और अपना स्वयं स्वामी होते हुये अपनी ही इच्छानुसार समाधि से सहस्रार में अपने ही (ब्रह्म स्वरूप) ध्यान में लीन रहता है।

॥ ॐ ॥ तत्सत् ॥ ॐ ॥

शतदशदलमध्ये निर्विशेषं निरीहं।
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ॥
जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित् स्वरूपं।
सकलभुवनबीजं ब्रह्म चैतन्य मीडे ॥ (महानिर्वाण)

—:※:—

सर्वेऽपि सुखिनस्सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत् ॥ (मनुः)

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

भारतीय दर्शन शास्त्र (न्याय-वैशेषिक)

(ले०-प्रो० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्रीतर्कशिरोमणि)

यह ग्रन्थ ऐसे अनुभवी विद्वान् द्वारा लिखा गया है जिन्होंने अपना जन्म भारतीय दर्शन के अध्ययन में ही लगा दिया है और पाश्चात्य दर्शन शास्त्र में भी निष्णात हैं। २५ वर्ष से अधिक समय तक एम० ए० श्रेणी के छात्रों को भारतीय दर्शन का अध्ययन करानेवाले प्रौढ़ दार्शनिक द्वारा लिखा गया यह ग्रन्थ अपने ढंग का अनूठा है। हिन्दी भाषा में तो इस प्रकार की यह पहिली रचना है।

सारे वैदिक दार्शनिक सम्प्रदायों के विवरण के साथ २ इसमें बौद्ध दर्शन के साहित्य और सिद्धान्तों का प्रमाणित विवेचन विशेष रूप से किया गया है। दार्शनिक विवेचन संक्षिप्त होने पर भी आलोचनात्मक है। न्याय वैशेषिक शास्त्र ही भारतीय दर्शन का द्वार है, जो इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। उसका संक्षिप्त परन्तु पूर्ण इतिहास और सिद्धान्तों का विशद तथा आलोचनात्मक विवेचन इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय दर्शन शास्त्र में प्रवेश चाहने वाले पाठकों के लिए यह ग्रन्थ बहुत लाभ-दायक और उपयोगी है। ग्रन्थ पर डालमिया पुरस्कार मिला है।

मूल्य ३.००

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: पटना :: वाराणसी